प्राक् प्रस्थिती कथन

इस पुस्तक के प्रकाशन का कारण यह है कि परमात्मा की उपासना अमृत है। आज वह उपासना देखलाने की चीज बन गई है। संसार मृत्युलोक है। यह सभी को मालूम है। परन्तु भगवान ने इस संसार की रक्षा के लिये भ्रम को कारण बना रखा है। वह भ्रम विद्वान बनने वालों द्वारा प्रसारित है। इसी से उपनिषद में लिखा है– पण्डितं मान्यमानाः मूढाः। यह श्रुति कठ० व मुण्डक० दोनों में है। मूर्ख पण्डित उसी को कहा जाता है– जो थोड़े दिन के जीवन में संसार के सुत वित लोक दूषणा को चाहता है। ऐसे ही मूर्खता का लोक में ज्यादा प्रचार भी है। क्योंकि कलि का राज्य है। फिर भी भगवान की कृपा, कृपापात्रों की रक्षा करती ही है। अतः समझने की बात यह है कि– एक रोटी या कपड़ा व घर या कोई भी चीज बिना बनाये नहीं बनती है। तब इतना बड़ा विश्व बिना बनाये कैसे बन गया ? अमेरिका ने एकार्डलेव बनाया तो वह विश्व के लिये भयानक घोषित हुआ, और ईश्वर ने सूर्य चन्द्रादि

नव ग्रह बनाये, सब अपने मर्यादा में दृढ़ हैं। करोणों वर्षों में भी ईश्वर की इच्छा से विरुद्ध नहीं चलते हैं। इतनी वड़ी कारीगरी का कर्ताने निर्गुण निराकार चित शक्ति को अपने विपरीत शंकल्प से विश्व के रूप में काल कर्म गुन स्वभाव से बांधकर बना रक्खा है। जो विश्व परमात्मा की इच्छा से निर्गुण निराकार चित शक्ति को पहले तो प्राकृत सगुण साकार बना कर अहंकार से बिपरीत शंकल्प के कर्म द्वारा स्वर्ग नर्कादि योनियों में जीव की ही इच्छा से जीव को बांधा है। फिर वेदों व अवतारों द्वारा अनुकूल इच्छा करने को शिक्षा देता है। जो जीव कई जन्म से भगवत कृपापात्रों का संग प्राप्त किये रहते हैं उनकी अनुकूल इच्छा से संकल्प उत्पन्न होने पर तब जीव जो निर्गुण निराकार चित शक्ति का अंश है। वह भगवत रूप होकर प्रकृति से परे सच्चिदानन्द भगवत धाम में जाकर भगवान की कृपा से भगवत समान रूप होकर समान सुख का भोग करता है। ऐसी स्थिति में परमात्मा आत्मा के भोग्य होते हैं। आत्मा परमात्मा का भोग्य होता है। इसी बात को लक्ष करके महात्माओं ने अपने आतम सम्वन्ध पत्र में लिखा

है- तत्सुखप्रधान स्वसुख तत्कृपालब्ध। इसी बातको लक्ष करके पूज्य पाद गोस्वामी जी भी लिखते हैं। सो जानै जेहि देहु जनाई जानै तुमहि तुमहि होइ जाई अर्थात् जिस पर श्रीरामजी कृपा करते हैं। उसको अपना सम्बन्ध जना देते हैं, तब आत्मा अपना सम्बन्ध परमात्मा के साथ जान जाता है तो तब उनके लिये यह आत्मा भगवान हो जाता है और इस आत्मा के लिये वे परमात्मा भगवान हो जाते है और इस डब्बा ढक्कन की तरह यह आत्मा उस परमात्मा के लिये सब कुछ कर सकता है सब कुछ स्वयं हो जाता है। आत्मा के अनेक रूपताके प्रमाण योगतत्वोपनिषद्

सर्व लोकेषु विहरन्नणिमादि गुणान्वितः।
कदाचित्स्वेच्छया देवो भूत्वा स्वर्गे महीयते।।१०९
मनुष्यो वापि यक्षोवा स्वेच्छयापीक्षणाद्भवेत्।
सिंहो व्याघ्रो गजो वाश्व स्वेच्छया बहुतामियात्।११०
यथेष्ट मेव वर्तेत यद्वा योगी महेश्वरः।

अर्थात्- परमात्मा से योग प्राप्त होने पर योगी चाहे जिस लोक में भी इच्छा करे। समस्त लोकों में अणिमादि समस्त सिद्धियों को अपने अधीन करके चाहे देवता हो जाय, मनुष्य हो जाय, यक्ष, सिंह, व्याघ्र, हाथी, घोड़ादि अनन्त रूपोंसे इच्छामय रूपों

से परमात्मा के साथ अनन्त बिहार करता हुआ जो चाहे सो कर सकता है। परन्तु उसकी समस्त चाहनायें परमात्मा के लिये और परमात्मा की चाहनायें उस आत्मा के लिये हुआ करती हैं। ऐसे ही छान्दोग्य उ० में भी सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति । अ० ८ खं० ५ मं० ४ में। अर्थात् नित्यधाम के सब पार्षद सत्यसंकल्पता से समस्त लोकों में सब कुछ कर सकते हैं। और भी- य आत्मा अपहत पाप्मा विजरोविमृत्यु र्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्य संकल्पः। छा० अ० ८ खं० ७ मं० १ पूर्वोक्तानुसार ही प्रकृति के विकारों से रहित सत्य संकल्प से सब कुछ कर सकते हैं। यह नित्य धाम के पार्षदों का स्वरूप कहा गया है। परमात्मा ने निर्गुण निराकार चित शक्ति को सगुण साकार अपने समान ऐश्वर्य का भोक्ता बनाने के लिये ही इस अविद्यामय संसार की रचना कर रक्खी है। यह आत्मा सत्य संकल्पादि परमात्मा के समान गुणवान होने पर भी जब तक यह माया में नहीं आया तब तक अपने को परमात्मा के परतन्त्र मानकर कोई संकल्प नहीं करता था, निर्गुण निराकार बना रहता था। अब जब परमात्मा ने अपने विपरीत

संकल्प सेमाया को उत्पन्न किया तो वह माया परमात्मा की इच्छा थी। जो अज्ञान अन्धकार दुःखमय हो गई। क्योंकि परमात्मा सच्चिदानन्द हैं। विपरीत संकल्प अज्ञान अन्धकार दुःख रूप हुआ जो ईश्वर की इच्छा मात्र था तो उस इच्छा में परमात्मा का अङ्ग तेज जो चितशक्ति का स्वरूप है सो उस इच्छा में प्रवेश कर गया। अब परमात्मा के दो रूप हो गये- जैसा कि छान्दोग्योपनिषद अध्याय ६ खंड २ मन्त्र ३ में लिखा है- तत ऐक्षत् बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत। तत्तेजो ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत् ।।३।। ता आप ऐक्षन्त बहुव्यः स्याम प्रजायेमहीतिता अन्न मसृजन्त।

अर्थात्–ॐ तत् सत् इति निर्देशः ब्रह्मणः त्रिविधः स्मृतः ।।गीता अ० १७ श्लोक २३।

परात्परब्रह्म ॐ तत सत् इन ३ नामों से स्मरण किया जाता है। तत् पद वाच्य प्रेरक परमात्मा की इच्छा का नाम ॐ है। जिस इच्छा में तत् पद वाच्य प्रेरक परमात्मा का सत् पद वाच्य तेज प्रवेश कर गया तो अब वह सत् पद वाच्य परमात्मा वासुदेव उस तत् पद वाच्य प्रेरक के अङ्गसे अलग उस प्रेरक

की इच्छा में प्रवेश होने से अब चार पाद विभूती विस्तार हो गई। क्योंकि सत् पद वाच्य वासुदेव तत् पद वाच्य प्रेरक परमात्मा की इच्छा को जानते हैं। इसलिये वासुदेव ने बहुत रूप धारण किये हैं परन्तु उस बासुदेव को कर्मो का बन्धन नहीं हुआ है। अर्थात् अपनी इच्छा को परमात्मा की इच्छा में मिलाकर काम करने से और प्रेरक के लिये काम करने से कर्मों का बन्धन नही होता है। यही बात गीता० अ० ३ में यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः। लिखा है। अर्थात्–युज् योजने धातू से योग वनता है। उस योग में जो कर्म होते हैं। वे यज्ञ शब्द से कहे जाते हैं। इस प्रकार के यज्ञमें जो कर्म होते हैं वे बन्धन कारक नहीं होते हैं। इसलिये तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त सङ्गः समाचर ।।९।। उस तत् पद वाच्य परमात्मा के लिये तुम कर्म करो अपने लिये मत करो। मैं भी ऐसा ही करता हूँ। कहा-गीता अ० ९ श्लोक ९

उदासीन वदासीन मशक्तं तेषु कर्मसु।
न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति।

अर्थात् ईश्वर ने मुझे प्रकृति का अध्यक्ष बना

रक्खा है। अतः मेरी अध्यक्षता में जगत व्यापार प्रकृति कर रही है। मैं उदासीन बना बैठा रहता हूँ नमे कर्म फले स्पृहा गीता ४-१४ में भी मुझे कर्म के फल की चाहना नहीं है। इसी से मुझे कर्म बन्धन नहीं होता है। जो मुझे ऐसा जानता है। उसको भी कर्म नहीं बांधते हैं। गीता अ० १८ में भी-

यस्य नाहं कृतोभावो बुद्धिर्यस्य नलिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान्नहन्ति ननिवध्यते॥१७॥

कर्तापन के भाव से रहित तथा फल के हानि लाभ में हर्ष शोक रहित यदि विश्व का उत्पन्न पालन प्रलय करने पर भी न वह कर्ता है न कर्म से बंधता है फिर कर्म करने पर कर्ता कौन बनेगा। इस प्रश्न के उत्तर में तत् पद वाच्य

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मामया॥६१-१८॥

परमात्मा समस्त प्राणियों के हृदय देश में निवास करके अपनी माया से सबको काठकी पुतली सदृश नचाते हैं॥६१॥ वे ही इस जगतके कर्ता भर्ता भी है। महा प्रेरक भी है जैसा कि गीता अ० १३-२२ में-

उपद्रष्टा नुमन्ताच भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ।।२२।।
उत्तमः पुरुष स्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रय माविश्य विभत्र्यव्यय ईश्वरः ।१७। अ० १५

अर्थात् उत्तम पुरुष परमात्मा अन्य हैं जो तीनों लोकों में आवेशित होकर सबका भरण पोषण करते हैं । अब प्रश्न होता है कि आप क्या हैं तो कृष्ण भगवान अपने को वताते हैं कि मैं-

ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाऽह ममृतस्या व्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।
।।२७ अ० १४।।

अर्थात् मैं उस परमात्मा ब्रह्म की प्रतिष्ठा [निवास स्थान] हूँ जिस परमात्मा के निवास स्थान में अव्यय आत्मा अमृत स्वरूप होकर तथा उस अमृतत्व का कारण सनातन भगवत धर्म है वह धर्म भी वही परमात्मा के घर में रहता है और यथार्थ सुख जो आत्म परमात्म सम्बन्धी है वह सुख तथा वह सुख क्या चीज है ।ऐसे प्रश्न पर गीता अ० ६ में लिखा है ।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगत कल्मषः ।
सुखेन ब्रह्म संस्पर्श मत्यन्तं सुखमश्नुते ।।२८।।

हमेशा भजन में मन लगाने वाला योगी (भावुक भक्त) सर्व पाप रहित हो उस परब्रह्म का सुख पूर्वक सुन्दर स्पर्श प्राप्त करता है तो तब अत्यन्त महासुख का भोग करता है। क्योंकि वह परमात्मा अंग-२ प्रति लाजहिं कोटि-२ सत काम हैं। जब एक ही काम संगम करहि तलाब तलाई-है तो तब जो आनन्द सिन्धु सूख राशी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी। है उस परमात्मा के लिये तो वेद भी मूर्ति मान होकर स्तुति करते हुये कहते हैं-स्त्रिय उरगेन्द्र भोग भुजदण्ड विशक्त धियो वयमपि ते समा समदृशोऽघ्रिसरोज सुधा। ॥२३॥ भागवत स्कन्द १० अ० ८७ में अर्थात् हे प्रभो जो स्त्रियां आपके शेष नाग सदृश विशाल भुजाओं के अलिङ्गन सुख में आशक्त चित्त रहती हैं उन स्त्रियों के समान हम सब वेद भी प्राप्त होवें, क्योंकि आप सम दृष्टि वाले हैं कृपा कीजिये। इस तरह की उपासना से आत्मा अमृतत्व को प्राप्त होता है-

अज्ञानता वश जीव अजर अमर होता हुआ भी उपासना की निष्ठा के विना पञ्चतत्त्वात्मकक्षर प्रकृति को सत्य मानकर संसार में ही अमर रहना चाहता है। असली सुख का शुद्ध सम्बन्ध तो आत्मा का

परमात्मा के साथ है। संसार के साथ नहीं है परन्तु छुड़ावै कौन ? ईश्बर की माया ईश्वर के अधीन है, जो ईश्वर को चाहता है उसी पर ईश्वर कीं दया होती है। तब भगवत भक्तों का संग प्राप्त होता है, जिस संत संग से— क्षर अक्षर निरक्षर शब्द व पर-ब्रह्म का ज्ञान होता है, क्षर स्वरूप मायामयी दृश्य सात्विक राजस तामस भेद से जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये तीन अवस्था तीन शरीर स्थूल सूक्ष्म कारण तीन देबता विश्व तेजस प्राज्ञ तथा तीन कर्म प्रारब्ध क्रिय माण संचित इतना लम्बा व्यवहार प्राकृत देशकाल अवस्था का है जो ईश्वर की माया कही जाती है। इसके बाद अक्षर आत्मा है जो अणु-२ होकर ब्रह्मा से मच्छर पर्यन्त ऊँचा नीचा व्यवहार करके ऊँची नीची प्रतिष्ठा को प्राप्त करके अहंकार से सुखा दुखी हो रहा है। निरक्षर परात्पर का तेज चतुर्व्यूहात्मक चारपाद विभूती होकर प्रेरक के लिये सव कुछ करता है अपने लिये कुछ नही करता है। दिव्य ज्ञान दिव्य अनुरागमय। सेवक स्वामि सखा सिय पिय के हैं। शब्द ब्रह्म परापश्यन्ती मध्यमा वैखरी भेद से प्रेरक की प्रेरणा है। प्रेरक भर्ता भोक्ता महेश्वर है, सोही श्रीसीतारामजी हैं।

विषयानुक्रमणिका

पृष्ट	पंक्ति	
१	६	श्री चारुशीला व श्रीप्रसादाजी के सहित ... ...
१	१०	ऋग्वेद मन्त्र में श्री हनुमानजी चारुशीला हैं
४	३	श्रीराम मन्त्र श्रीजानकीजी ने श्रीहनुमानको
१४	१६	ऋग्वेद मन्त्र में श्री हनुमानजी का चारुशीला
१७	२	ऋग्वेद मन्त्र में श्रीहनुमानजी को प्रधानत्व
२०	२	ऋग्वेद मन्त्रमें श्रीहनुमानजी का पतिब्रतात्व
२३	१०	उपनिषद से प्रमाणित आचार्य श्रेष्ट तत्व ...
२४	२	सनकादि प्रहलादादि का श्रीहनुमानजी से प्रश्न
२५	५	श्रीहनुमानजी का उत्तर–श्रीरामजी ही ... ...
२५	१५	सनक प्रहलादादि का फिर प्रश्न– श्रीरामांग
२६	२	श्रीरामजी के अङ्ग प्रत्यंगों का वर्णन ।
२६	६	श्रीहनुमानजी के विना श्रीरामसिद्ध नहीं ... ...
२७	१	हनुमान मन्त्र के श्रीराम ऋषी हैं ।
२७	५	श्री हनुमानजी का ध्यान ।
२७	१७	श्रीसीताराम उपासकों का मनोरथ श्रीहनुमान
२८	१०	श्रीरामतापनायोपनिष में श्रीहनुमान सहित ...
२९	१७	नारद पञ्चरात्र में श्रीसीतातत्व नारायणजीने
३०	१६	सर्वशक्ति स्वामिनी श्रीसीताजी है ।

३१	६	श्रीसीताजी का अवतार।
३२	१	सर्व सखी समाजमें श्रीसीताजी की झांकी।
३२	६	श्रीसरयूजी का स्वरूप गुण।
३४	५	श्रीरामपार्षदों का अनन्त रूप धारण करना।
३७	१६	भगवत धाम ब्रह्म स्वरूप है।
४०	१	भजन का स्वरूप प्राप्ति उपाय।
४१	१०	भगवतपार्षद भगवत धाम एक तत्व है।
४२	६	श्रीहनुमानजीका श्रीप्रसादा नामका कारण
४३	१	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में श्रीहनुमान जी
४४	५	मन्त्र स्वरूप श्रीराम अगूठी की प्राप्ती श्री…
४५	१	सखी का काम श्रीहनुमानजी ने किया।
४६	५	प्रियाप्रीतम के कार्य में सखी का वहुरूप …
४६	१३	पटरानी के साथ लीला में पति का सखी के…
४८	१८	परिवार सहित श्रीरामजी का श्रीहनुमानजी…
५०	६	श्रीभरतजी की भावना का परिचय भी श्री…
५२	१२	श्रीभरतजीने श्रीहनुमानजी की पूजा की है।
५३	६	श्रीतुलसीकृतमें भी श्रीहनुमानजीमें हो मुख्यता
५५	१२	सेवक द्वारा स्वामी की बड़ाई भी श्रीहनुमान…
५७	१	श्रीरामका सर्व लोक स्वतन्त्र रमणत्व।
५८	१	निगुराओं का मनमाना गुरु होता है।

५८	६	अगस्त्य संहितामें श्रीजानकीजी की प्रधानसखी
६७	१६	श्रीलोमस रामायण में श्री श्रीप्रसादा श्रीचारु०
६८	५	अवतार लेने का कारण।
६९	७	श्री चारुशीला जू को हनुमान होना व ... ...
७०	१३	श्रीमिथिलेश महाराज महारानी का अवतार
७१	६	श्रीचारुशीला जू का सर्वेश्वरी पद प्राप्ती।
७२	८	अवतार का समय निश्चय।
७३	३	उभय पक्षमें बहुरूप से सेवा का आशीर्वाद।
७५	३	दिव्य धाम व प्रकृति मण्डल, दोनों स्थानों में...
७६	८	शुभगादि सखियों का सखादिरूप होना व......
६८	१	चित्रकूट की लीला का संकल्प तथा कब......
७९	१४	श्रीहनुमत संहिता का प्रसंग अगस्त्य हनुमान...
८०	५	अगस्त्य जी ने कहा आप चारुशीला रूप से ...
८१	११	श्रीहनुमानजी ने अगस्त्य बात स्वीकार किया
८२	१	अमर रामायण में अष्ट सखी प्रसंग।
८४	१६	कनक भवन में सखियों का निवास स्थान।
८७	३	मय मन्त्रि संयुक्त प्रधान ८ सखियों की.........
९६	८	सीतारामानन्य रसतरंगिणी में प्रधान आठ...
९७	७	श्रीजानकी पूजा पद्धति में ८ सखी।
९८	९	गीता प्रेस गोरखपुर का छपा मानस पियूष ...

१०१ ६ श्रीयुगलानन्यजी का श्रीचारुशीला जू के...

१०२ १६ श्रीअग्रस्वामी जी व करुणासिन्धुजी के......

१०३ १७ हनुमत शिव सुक सनक शेष ये पाँच मुख्य ...

१०४ ६ श्री कीलस्वामी की परम्परा में श्रीप्रसादा ...

१०४ १५ श्री हनुमानजीने प्रगट होकर में श्रीप्रसादा हूँ

१०५ ११ श्रीअनन्तानन्दजी को श्रीचारुशीलाजी ......

१०६ ३ दीनबन्धू श्रीरामप्रसादाचार्य सर्वेश्वरी चारु०

१०६ १४ श्री ज्ञानालीजी के आचार्य श्री सर्वेश्वरी ...

१०८ १ श्रीसीतायन ग्रन्थमें ८ सखियोंके माता-पिता

१११ ४ नैपाल सरकार के संरक्षण में प्रधान ८ सखी

१११ ६ श्रीहनुमानजी से विरुद्ध आचार्यत्व--चोरों ...

११५ ८ श्रीराम मन्त्र में आत्मा को परमात्मा के ...

११६ १० अष्टपार्षद बहुत रूप धारण करते हैं प्राचीन०

११७ १७ श्रीमद्वाल्मीकीय में श्रीहनुमानजी का बहुरूप

११८ १० सभी पार्षदों का बहुरूपत्व।

११८ १७ छान्दोग्योपनिषदमें भगवत धाम श्रीअयोध्या

१२३ १३ श्रीगोस्वामी तुलसी दासजी की भावना।

१२४ ६ श्रीसीताजी धाम स्वरूपा तथा अधिष्ठात्री...

१२८ १ श्रीसीताजी की अंशभूता अमित में ३३ मुख्य

१२९ १ अवतार भी धाम स्वरूप हैं तथा धर्मस्वरूप हैं

१३१ १३ एकही ईश्वर स्त्री पूरुष दो रूप प्रेरककी प्रे०
१३२ ८ प्रेरक परमात्मा रामने स्वतन्त्र इच्छा से ...
१३३ १ सभी प्राणी भगवत धाम के अंश है ।
१३४ १ पच्चीसवां तत्व व छब्बीसवां तत्व ।
१४० १ आत्मा का पच्चीसवां तत्व मुक्तावस्था है।
१४२ १ चारपाद विभूती का प्रगट होना ।
१४५ १ महाभागवत की पहिचान ।
१४७ १ आत्मा का भगवत्प्राप्ती की अवस्था ।

१ क्षर २ अक्षर ३ निरक्षर ४ शब्द ५ परात्पर ये पांच प्रकार से परमात्मा को निश्चय करना पड़ता है। जैसाकि महारामायण सर्गपचास में श्री पार्वती जी का प्रश्न है।

किंक्षरश्चाक्षरं किञ्च किन्निरक्षर मेवच ।
किम्बै निरक्षरातीतं सर्वङ्कथय विस्तरात् ।।३।।

क्षर क्या है अक्षर व निरक्षर क्या है तथा निरक्षरातीत क्या है। हे महादेवजी सब बिस्तार से कहिये ।।३।।

॥ श्री शिव उवाच ॥

माया मयादिकं सर्वं पञ्चतत्त्वोद्भवं तनुम् ।
दृष्टं श्रुतादिकञ्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥४॥

पांचतत्वों से उत्पन्न शरीर सम्बन्धी देखना सुनना सब माया की रचना को क्षर शब्दसे कहा जाता है ॥४

व्यापकः सर्वभूतेषु यस्य नाशः कदापि न ।
जीवात्मा सर्वगोऽभेद्यः सोऽक्षरो भूधरात्मजे ॥५॥

क्षिति जल पावक गगन समीर ये पाँच तत्वों में छिपकर स्वर्ग नर्कादि योनियों में भ्रमण करता हुआ अविनाशी अणु ज़ीवात्मा को अक्षर कहते हैं ॥५

सर्व साक्षी चिदानन्दो निर्द्वन्दोऽखण्ड एव यः ।
परमात्मा परब्रह्म कथ्यते स निरक्षरः ॥६॥

जो परमात्मा का दिव्य तेज चारपाद विभूती के रूप में अखण्ड सर्व साक्षी निर्द्वन्द चिदानन्द पर ब्रह्म कहा जाता है वह वासुदेव भगवान वहुरूपधारी निरक्षर ब्रह्म है ॥६॥

असंख्य मित्रवत्तेजो वेदा अपि न यं विदुः ।
सर्वं निरक्षरातीतो रामः परतरात्परः ॥७॥

जो असंख्य सूर्य के समान तेज वाला जिसको वेद भी नेति २ कहते हैं ठीक नहीं जानते हैं वही परात्पर ब्रह्म निरक्षरातीत श्रीरामजी हैं ॥७॥

यो वै वसति गोलोके द्विभुजश्चधनुर्धरः ।
ब्रह्मानन्दमयो रामो येन सर्वम्प्रतिष्ठितम् ॥८॥

जिसने सबकी प्रतिष्ठा को बढ़ा रक्खा है तथा जो इन्द्रियों के स्वामी आत्मा के सबके भीतर प्रेरक रूप में वास करता है वह दो भुजा वाला धनुषधारी ब्रह्म आनन्दमय श्रीराम हैं ॥८॥

भूतः क्षरोऽक्षरश्चांशः कला चैव निरक्षरः ।
स्वयं निरक्षरातीतः स एव जानकी पतिः ॥९॥

जो स्वयं तो निरक्षर से भी परे हैं निरक्षर ब्रह्म जिसके कला हैं। इन कलाओं द्वारा अनन्त किरणों अंशों जीवों को जो अपनी इच्छा रूप जड़ प्रकृति को पञ्चभूत रूप में प्रगट करके क्षर ब्रह्म में प्रवेश कराके कर्म से बांधा है तथा भजन करने वाले जीवों पर दया करता है वही श्रीजानकी जी के पति श्री रामजी हैं। ॥९॥

इक्षाभूतः क्षर स्तस्य चाक्षार स्तेज उच्यते ।
निरक्षरो घन स्तेजो वर्तते जानकी पतेः ॥१०॥

श्री जानकीपति दो दलक बीज बत परात्पर ब्रह्म हैं। और आपकी इच्छा भूत माया अज्ञान अंधकार दुःख स्वरूपा जड़ प्रकृति क्षरब्रह्म हैं। आपका

तेज अंश अक्षर ब्रह्म जीवात्मा जो अनन्त है तथा आपका सघन महातेज चार पाद विभूती के रूप में निरक्षर ब्रह्म है। जो ॐ कारके द्वारा परा, पश्यन्ती मध्यमा, वैखरी भेद से सबको प्रेरणा आप करतेहैं। आपसे सभी प्रेर्य है।

स्वयं निरक्षरातीतो राम एव इति श्रुतिः।
ब्रह्म ज्ञान निमग्नाये भजन्ति सनकादयः ॥११॥

ॐ परात्पर ब्रह्मकी वांणी है। ॐ से वेद प्रगट भये वेदों में भजन करने की विधि को प्रथम सनकादि सन्त अपनाये जो ब्रह्मानन्द दिव्य ज्ञान मग्न भये, उन वेदोसे निरक्षरातीत श्रीरामजी को कहा गया है। जैसाकि छान्दोग्य० ६–२–३ में लिखा है- तदैक्षत् तत्तेजोऽसृजत्० आदि। यहां पर क्षरको भी ब्रह्म इस लिये कहा है कि ब्रह्म शव्द का अर्थ दिव्य होगा क्योंकि वेद ब्रह्म है गुरु ब्रह्म है ॐ ब्रह्म है आत्माब्रह्म अवतार ब्रह्म है विभूती ब्रह्म है धाम ब्रह्म हैं आदि शव्दों में दिव्यत्व का ही लक्ष है। महत प्रकृति भी परमात्मकी इच्छा होने से ब्रह्म है जैसा कि गीता अ० १४ श्लोक ३ में शुभम् ॥११॥

श्रीसीताराम चन्द्राभ्यां नमः

श्रीमती सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः

श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः श्रीमते रामानन्दाय नमः

❀ श्रीसद्गुरुवे नमः ❀

श्रीसीतारामयोः- अष्टौ पार्षदाः

वामे श्रीजानकीयस्य दक्षिणे चारुशीलिका।
पुरतः श्रीप्रसादा च वन्दे श्रीरसिकेश्वरम् ॥

"वेदोक्तो हनुमान्नेवचारुशिला"

ऋग्वेद ५-३-३

तवश्रियेमरुतो मर्जयन्त,
रुद्रयत्ते जनिमचारुचित्रम्।
पदं यद्विष्णो रूपमं निधायि,
तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥

अन्वयः—रुद्र तव श्रिये मरुतः मर्जन्त यत्ते जनिम चारु यद् विष्णोः उपमं चित्रं पदं निधायि, तेन गोनाम् गुह्यं नाम पासि।

श्रीराघवानन्दाचार्य स्वामीजी कृत रहस्य मार्तण्ड भाष्याम्– श्रीरामविद्योपासकं जात राम साक्षात्कारं हनुमन्तं स्तुवन्नाह–तवेति । रुद्र ? हनुमन् ? तव त्वदधिगतत्वा त्वत्सम्वन्धिन्यै । श्रिये रामविद्यारूप सम्पदे । तामवाप्तु मित्यर्थः । मरुतो देवाः भगवत्कृपा पात्राः मर्जयन्त शोधयन्ति । श्रीरामबिद्यावाप्तये श्री रामविद्योपासकं गुरुं त्वां मृगयन्त इत्यर्थः । तपोध्याना-दिभिरात्मानं त्वच्छिष्यत्व योग्यता मानयन्तीतियावत् । विशेषण द्वारेण विशेष्यस्य वैशिष्ट्यमाह– यद्यस्मा द्राम विद्यात्मक सम्पदो हेतोः । ते तव रुद्रस्यहनूमतः । जनिम जन्म नाम चारुशीला इति रूपेण शरीर धारण मित्यर्थः । चारुरमणीयं सफल मित्यर्थः । एतदेव हि जन्मनो रामणीयकं यद्रामविद्यावाप्ति रितिभावः । ननु कां राम विद्या महं धारयामीत्यपेक्षायां ताँधारण प्रकारेणाह-यद् यस्माद् विष्णो विष्णु वाचकस्य पदस्य रामेत्यस्य । उपमं समीपे श्रूयमाणं यथास्या तथा (विविध रूपैः विविध प्रकारेण सर्वं सेबाधिकारत्वात्) चित्रं पूर्वं मन्त्रोक्त रीत्याऽग्नितत्वात्मक रेफघटितं पदं रामि ति पदम् [तस्मै रमणीय कार्यं कुशलं । रामस्य रमणीयत्वं सर्वं वस्तु रूपेण वा सर्वविध कैङ्कर्य

करणत्वं। सर्व गुण पूर्णत्वम् सुष्ठुत्वं सुशीलत्वं स्वामि सुख वर्द्धनाय सुष्ठुकरणत्वं। तस्मै श्रीरामाय] निधायि निहितवानसि तथा तेन-उक्तेन रां रामे "ति पदेन सह। गोना मिन्द्रियाणाम्। गुह्य गूहनस्य सम्वरणस्य स्थान भूतं हृदयं मन्त्र हृदय नमः पद मित्यर्थः। तदेवाह नाम नमत्यनेनेति प्रह्वता प्रतिपादकम्। पासि निदधासि। नमः शब्द योगा च्चतुर्थी। ततश्च रां रामाय नम इति राम विद्योद्धृता वेदितव्या। अत्र श्रिये इति शब्देन हनूमतो रामविद्यामयत्वं सीताराम उभय पक्षात्मसमर्पणत्वं वाह्याभ्यन्तर परिचर्या करण-त्वं तेन स्थिर चेतस्कत्वं ध्वनित मिति पूर्व मन्त्रोक्तो नकिरित्यंशो व्याख्यातो वोध्यः। यथा श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये। अत्र मन्त्रद्वये श्रीमद् शब्देन मतु प्रत्ययार्थे–अनन्याराघवेणाहं भास्करेण प्रभायथा–वाल्मीकीय ५-२१-१५ तथा श्रीरामेणाप्युक्तं-अन-न्याहि मया सीता भास्करेण प्रभायथा वा० ६-११८-२० इत्यत्र उभयसरकारयोः वाण्या मतुप्प्रत्ययार्थं दर्शितं तथैव अत्रापि श्रियै शब्दे श्रिया श्रीश्च भवेदग्र्या वा० २-४४-१५, अनन्त श्रियाम् मध्ये यथा सीता त्तथैवा-त्रापि श्रीहनुमद्भाव वोध्यस्थाने प्राप्त्यर्थं स्तुवन्तिदेवाः)

अत्र श्रीमदाञ्जनेयस्य तारक षडक्षर श्रीराममहामन्त्र राजस्य तत्त्ववेतृत्वं श्रीरामविद्यामयत्वं प्रथम धारकत्वञ्च। इममेव मनुं पूर्वं साकेतपति र्मामिवोचत्। अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय। स वेद वेदिने ब्रह्मणे [श्रीमैथिली महोपनिषद्] गृहीत्वा विधिवद् रामान्मन्त्रराजं षडरक्षरम। हनूमते च दत्वा तं राम मन्त्रं षडक्षरम्। विधये मन्त्र दानाय प्रेरयामास मारुतिम् (श्रीवशिष्ठसंहितायाम्) इत्याद्यार्षतम प्रबन्धतोऽनुसन्धेयः।

त्रिदण्डी स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्यकृत

दीपिका टीका

श्रीराम विद्यामय स्थिर मना श्रीहनुमानजी की देवता सब स्तुति करते हैं:- हे रुद्र हनुमानजी आपकी श्रीराम विद्यारूप सम्पदाको पानेके लिये देवगण भगवत्कृपापात्र सब आपका अन्वेषण करते हैं- गुरु रूप में आपको प्राप्त करना चाहते हैं। तप ध्यान आदि के द्वारा आपके शिष्यत्व के लिये प्रयास करते हैं। इस श्रीराम विद्या रूपी सम्पदा के कारण आपका उत्तम जन्म का नाम चारुशीला है, सफल है। क्योंकि आप विष्णु

वाचक राम के पद समीप में अग्नितत्वात्मक रमणत्व युक्त रेफ पद को रखते हैं, तथा उसके साथ प्रणाम वाचक सभी इन्द्रियों का आलय हृदय, मन्त्र हृदय, नमः पदको रखते हैं अर्थात् "राममन्त्र में नमः" यह पदसे श्रीराम विद्याकी उपासना करते हैं। नित्य समीप में रहते हैं। उसका ही जन्म सफल है तथा वही गुरु है जो स्थिर मनसे श्रीराम विद्याकी उपासना करता है।

इसी प्रकार श्रीमन्त्र रामायण में श्री गोविन्द सूरि सूनू श्री नीलकण्ठ जी रचित मन्त्र रहस्य व्याख्या युक्त सम्वत् १९६७ को बम्बई, बेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित के पृष्ठ २२५ में श्रीनीलकण्ठजी लिखते हैं-

एतस्य श्रीरामस्य मुख्यमुपासकं रुद्रं (हनुमन्तं) स्तुवन्ति देवाः। हे रुद्र]हे हनुमान् तवश्रिये त्वदधिगत सम्पत्प्राप्त्यर्थं श्रीराम बिद्यावाप्त्यर्थं मरुतो देवाः मर्जयन्त शोधयन्ति तपो ध्यानादिनात्मानं यत् यतस्ते तव जनिम जन्म नाम चारु रम्यम् [रमणीयम्] यत् यतस्त्वया चित्रं (शील प्रधान चरित्र) पदं रेफाख्ये-णाग्निना [रामेण सह] युक्तं।

"चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्-ऋ० १०-१११-७ इत्युदाहृत मन्त्रे प्रसिद्धं रामित्येव रूपं, विष्णो रूपमम् विष्णोर्वाचकस्य राम पदस्य समीपे दृश्यमानं यथा स्यात्तथा निधायि, न्यधायि निहितम्। राममित्यस्य समीपे सपूर्वकमेव विष्णुवाची पदं निधेयम् तत्र राघवादि पदेभ्यः शीघ्रतरं राम पदमेव वर्ण साम्याधिक्या दुपस्थितं भवति, तेन रामपदेन सह नाम नमस्त्यनेनेति नाम नति वाचि पदम् : उपासिनाम विशिनष्टि गो नाम गुह्यमिति । गोनामिन्द्रियाणां गूहन स्थानं हृदय मित्यर्थः । तेन हृदय शब्दितं नमः पद मुद्धृतं भवति तेन राममन्त्रस्यत्रिपदान्युद्धृतानि भवन्ति। यतस्त्वया चित्रं पदं विष्णो रूपमम् निधायि यतश्च तेन सह गोनां गुह्य नाम पासि, अत स्ते जनिम जन्मनाम चारुशीला इत्यन्वयः ।

मर्म प्रकाशिनी टीका

अर्थः-इन श्रीरामजी के मुख्य उपासक श्री रुद्र रूप श्रीहनुमानजी की देवता स्तुति करते हैं- हे हनुमान् "तवश्रिये" आपको प्राप्त जो श्रीराम विद्या रूप दिव्य श्रीसीताराम सेवा सम्पत्ति अर्थात् श्रीसीताराम जी की

सम्पूर्ण सेवा को प्राप्त करने के लिये "मरुतो देवाः मर्जयन्ति" सोधयन्ति नित्यपार्षद भगवत कृपा पात्र सब खोजते हैं, अर्थात् तपस्या ध्यान स्तुति आदि से अपनी आत्मा को आपके अनुकूल करते हैं जिससे आप प्रसन्न होकर उन अपने अनुकूलों को श्रीसीताराम विद्या रूप श्रीयुगल सरकारकी सेवा यथाधिकारानुसार देवें। यत् यतस्ते तव जनिम जन्म नाम चारु" जिससे आपका जन्म का नाम चारु है अर्थात् चारुशीला है। जो यह नाम अतिरमणीय है। सर्वलोक प्रसंशनीय है। जिस कारण से आपके द्वारा 'चित्रंपदं' रेफ रूप अग्नि के संयुक्त हुआ है अर्थात् जैसे ऋग्वेद १०-१११-७ के मन्त्र में लिखा है, "चित्रामस्य केतवो राम विन्दन्" इस मन्त्र में उद्धृत प्रसिद्ध 'राँ' इस रूप को विष्णु वाचक पद के समीप में जैसे हो तैसे दृश्यमान है। वैसे ही "निधायि" स्थापित किया। शास्त्र मर्यादा के अनुसार 'रां' इस पद के समीप में इस बीज को प्रथम करके फिर विष्णु वाचक पद को अर्थात् रामाय इस पद को स्थापन करके तब राघवाय आदि अनेक नाम पद स्थापित होते हैं। सभी सामान्य पदों की अपेक्षा राम पद सर्वाधिक मान्य होता है। वैसे हीं

राम पद के साथ नाम नमन्ति नमः वाची पद नमस्कारात्मक होते हैं। उपासना का विशेष स्थान "गोनाम गुह्य" गो कहते हैं इन्द्रियों को इन्द्रियों का गुहन स्थान हृदय होने से हृदय शब्द से नमः का वोध हुआ उस नमः से रामाय पद का योग होने पर त्रैपद युक्त राममन्त्र के तीन पदों का उद्धरण हुआ। अतः हे हनुमान आपके द्वारा "चित्रं पदं" अर्थात् अग्नि वीजं युक्त विष्णु पद बाच्य रामाय पद के साथ सभी उपासकों के हृदय में गूढ़ तत्व श्रीराम विद्या का प्रकाश करके सब आत्माओं की श्रीराम विद्या से रक्षा तथा वृद्धि करते हैं। अतः आपका माधुर्य मय जन्म का नाम श्रीचारुशीला है।

इसके अलावा भी इस मन्त्र का अन्य विद्वान् अर्थ किये हैं यथा–

श्रीचारुशीला रूपेण अवतीर्ण श्रीहनुमन्तं स्तुवन्ति देवाः– हे रुद्रावतार हनुमान मरुतः देवाः मर्जयन्त– मर्जयन्ति तप आदिभिः स्वात्मानं शोधयन्ति इत्यर्थः। किमर्थं-तव त्वद धिगत श्रीसीताराम विद्या वाप्त्यर्थं शुद्धान्त स्करणाः श्रीसीताराम तत्वं श्रीयुगल मन्त्रार्थादि प्राप्त्यर्थम्। कुतः इति चेत्–यत्–यतः ते तव चारु

(चारुशीला रूपेण) जनिम-जन्म चित्रं आश्चर्यं जनकं अभूत्। पूर्वं वायुपुत्रो हनुमान। हनुमान रूपेण लङ्का दाहकः ततोरुद्रः, रुद्रावतारः संहारकर्ता। अधुना चारुशीला सर्वेश्वरी श्रीसाकेते श्रीसम्प्रदाय प्रवर्तिका सखी वा श्री साकेतादवत्तीर्णा एवं सर्वेश्वरी श्री चारुशीला शास्त्र मान्यापि तथा अधुनापि सम्प्रदाय मान्या सर्वेश्वरी श्रीचारुशीला इत्यपि आश्चर्यं चित्र पदस्याभिप्रायः। चारु नाम सुन्दरं ते जनिम जन्म अभूत् इति चारु पदे श्लेषात्। चारु शब्दस्य चारुशीला इत्यर्थं करणं कथमिति शङ्का शास्त्रविद्भिः भावुकैः रसिकैः न कार्या। यतः शास्त्रमेव तथार्थं करणे प्रमाणम् तच्च शब्द साधुत्वे प्रधानम् व्याकरणम् तथा हि सिद्धान्त कौमुद्यां तद्धिते प्राग्दिवीये "ठाजादाबूर्ध्वं द्वितीयादचः" इति सूत्रेण "चतुर्थादनजादौ वा लोपः पूर्वपदस्य च।। अप्रत्यये तथैवेष्ट इ वर्णाल्ल इलस्य च-इति श्लोक वार्तिकस्थस्य अप्रत्यये तथैवेष्ट इति खण्डस्य व्याख्यानभूतेन विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तर पदयोर्वा लोपो वक्तव्य, इति वार्तिकेन सिध्यति। यथा देवदत्तः देवः दत्तइत्यत्र प्रत्यये अविधीयमानेऽपि पूर्वस्य देव पदस्य लोपे दत्त पदेन, उत्तर पदस्य लोपे सति देव

पदेन, देवदत्तस्य ग्रहणं भवति, तथैवात्रापि चारुशीलेति समुदायस्य उत्तरस्य शीलेति पदस्य लोपे सति चारु पदेन चारुशीलेत्यर्थस्य पदस्य च ग्रहणं बोधः, यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायीतिन्यायात्। अपरञ्च नामैक देशेन नाम मात्रस्यापि ग्रहणम्, इत्यपि न्यायः। पातञ्जले महाभाष्ये-सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे-इति वार्तिक व्याख्यान प्रसंगे उपलभ्यते-सत्या भामा सत्य भामा-इति उदाहरणम्, तथैव प्रकृतेऽपि सङ्गमनीयम्।

अर्थः-चारु शब्द का चारुशीला अर्थ कैसे हुआ। ऐसी शङ्का विद्वान् भावुक जन नही कर सकते हैं। क्योंकि शब्द साधुत्व का विधान करने वाला शास्त्र व्याकरण है। वह प्रमाण सर्व मान्य है।

जैसे कि-सिद्धान्त कौमुदी त०-प्रागिवीये "ठाजादावूर्ध्वं" द्वितीया दच-इस सूत्र के ऊपर श्लोक वार्तिक है:-

चतुर्थादनजादौवा लोपः पूर्वपदस्य च।
अप्रत्यये तथैवेष्ट इवर्णाल्ल इलस्य च॥

इस वार्तिक के तृतीय चरण के व्याख्यान में "विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तर पदयोः वा लोपो वक्तव्य" ऐसा है। उसका अर्थ है-प्रत्यय न हो तो तो भी पूर्ण

पद या उतर पद लोप विकल्प से होता है। उदाहरण देवदत्त। दत्तः-देवः-यहां कोई प्रत्यय नहीं होता है। परन्तु देवदत्त शब्द में पूर्व पद लोप हुआ तो देवः-जो देवदत्त शब्द से बोध होता है। वही केवल दत्त अथवा देव शब्द से भी अर्थ बोध होता है। ऐसे यहां पर भी उत्तार पद शीला का लोप हुआ है। केवल चारु शब्द से चारुशीला रूप अर्थ का बोध होता हैं। और सिद्धेः शब्दार्थ सम्बन्धे इस भाष्य के वार्तिक के व्याख्यान में पातञ्जल महाभाष्य में भी लिखा है-नामैक देशेन नाम मात्रस्य ग्रहणं भवतीति। नाम के एक भाग से भी सम्पूर्ण नाम का ग्रहण होता है। जैसे-सत्या भामा सत्यभामा, केवल सत्या शब्द से या केवल भामा शब्द से भी सत्यभामा का बोध होता है। ऐसे ही यहां पर भी चारु शब्द से चारुशीला का अर्थ ज्ञान होता है।

श्रीहनुमत् संहिता में लिखा भी है कि श्रीअगस्त्य जी श्रीहनुमान्जी से-त्वं साक्षाच्चारुशीला च नित्या मध्ये प्रपूजिता-कहे हैं।

ऋग्वेद १०-८६-९। अथर्ववेद २०-१२६-९

अवीरामिव मामयं शरारु रभिमन्यते। उताह

मस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मान्द्रि उत्तरः।

नीलकण्ठी टीका-एवं रामानुग्रह मात्मनि श्रुत्वा सीता हनुमन्तं स्वस्य दुःखमिष्टं ञ्च निवेदयति-अवी-रामिवेति-अयं शारारू मुंमुर्षुः रावणः माम् अवीरा-मिव वीररहितामिव अभिमन्यते हिनस्ति राक्षसी द्वारा तर्जयति, उत परन्तु अहं वीरिणी वीरवती अस्मि इन्द्र पत्नी परमेश्वरस्य श्रीरामस्य पत्नी सहचारिणी अस्मि। मरु द्वायु स्तत्पुत्रश्च त्वं सखां यस्याः सा मरुत्सखा अस्मि विश्वस्मात् त्रैलोक्यादिन्द्र उत्तरः उत्कृष्टतरः। अतएव वीरवतीं माम् धर्षयन् अयं मरिष्यत्ये वेत्यर्थः।

इस प्रकार से श्रीरामजी का अनुग्रह अपने उपर सुनकर श्रीसीताजी श्रीहनुमानजी को अपना दुःख तथा अपनी अभिलाषा को कहने लगीं यह श्रीरामजी के बाण का भोजन स्वरूप मरने की इच्छा वाला रावण मुझको दुर्बला की तरह से मान रहा है। इसी से राक्षसियों द्वारा मुझको तर्जना दे रहा है। परन्तु मैं वीरवती, वीर पति वाली हूँ। परमेश्वर श्रीराम की पत्नी हूँ, पतिके समानानुसरण करने वाली हूँ। वायु के अवतार आप श्रीहनुमान मेरी सखी (श्रीचारुशीला)

हैं। ऐसी मरुत सखी वाली मैं त्रैलोक्य से परे सर्वेश्वर श्रीराम की पत्नी हूँ। इस प्रकार की वीरवती को धर्षणा देने वाला यह रावण अवश्य मरेगा ही।

इस मन्त्र में मरुतसखा शब्द में मरुत वायु प्राण को कहते हैं सखा शब्द सख्यशिश्वीति भाषायाम् ४।१।६२ इस पाणिनीय सूत्रानुसारसखि एवं अशिशु से भाषा में ङीष् प्रत्यय होता है। सखि ङीष् (ई) इकार लोप, सखी=मित्र स्वरूपा स्त्री। नहीं है शिशु=पुत्र जिसका ऐसी स्त्री अशिशु ङीषयण् अशिश्वी=पुत्र रहिता स्त्री। इस सूत्र में सादृश्यार्थक इति शब्द की भाषायाम् के अनन्तर योजना करनी चाहिए, भाषामें भी वेद मन्त्रमें इसकी प्रवृत्ति होती है। अपि शब्द छन्द का संग्राहक है। वेद मन्त्र में अशिश्वी सिद्ध हुआ। "सखा-सप्तपदी भव" यहां वैदिक प्रयोग में ङीष् को निषेधार्थ सूत्र में भाषायाम् कहा है। अत्र स्त्री रूपार्थ में भी वेद में सखारूप है, सखी रूप नहीं है। अतः मरुतसखा का अर्थ हुआ कि जिसको तुम प्राण प्रिया सखी हो ऐसी में सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीराम की पत्नी हूँ। यह रावण अवश्य

मरेगा यह तात्पर्य हुआ। इस प्रकार श्रीहनुमान जी को बानर रूप में छिपी हुई अपनी प्रधान लखि का गौरव श्रीजानकोजी को वेद में कहा गया है।

ऋग्वेद १०–५६–१

इदं त एकं पर ऊं त एकं–
तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
संवेशने तन्व श्चारु रेधि–
प्रियो देवानां परमे जनित्रे॥

अन्वयः–तन्वः एकं ते इदम् ऊं ते एकं परे चारुः तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व संवेशने देवानाँ प्रियः जनित्रे परमे एधि।

रहस्यमातण्डभाष्यम्– सीताया यदुक्तं विरिणीति होत्रमिति च। तत्र हनुमान् समाधान माह–इदमिति[1]। तन्वः–दाम्पत्य शरीरस्य, एकं एकमर्धरूपं, ते तव इदं दृश्यमानं शरीरम् ऊं तथा, ते–तव, एकं–अपरमर्धरूपम् परे–परम–समुद्रस्य पार इत्यर्थः। अतः चारुः चारुशीला नाम्नी तव सखी अहं वानररूपेण आगतास्मि अतः तृतीयेन द्वाभ्यां त्वद्रूपाभ्याँ भिन्नेन मया ज्योतिषा दीप्तिमता, बलवते–त्याशयः। सहायेने

तिभावः। संविशस्व-संगताभव। मिथुनीभवेत्यर्थः। तवेच्छाचेदहं त्वां रामेण संयोजयितुं शक्तस्तत्र त्वां प्रापयिष्यामीतिभावः, ततश्च संवेशने रामेण त्वत्संयोगे सति। देवानां-यज्ञभागभुजां देवानां प्रियः यज्ञसम्पादनादिष्टः तव भर्ता श्रीरामो भविष्यति। त्वत्सहायेन यथाविधि यज्ञसम्पादनादिति भावः। त्वं च जनित्रे प्रजोत्पत्त्या कृत्वा, परमेस्वगृहे एधि पुत्रवती भविष्यसि इत्यर्थः।

दीपिका टीका

श्री सीताजी की वात सुनकर हनुमान जी कहते हैं—आपके दाम्पत्य शरीर का एक अर्ध भाग आपका यह शरीर दीख रहा है, तथा एक दूसरा भाग अन्यत्र समुद्र के उसपार है। मैं आपकी चारुशीला नामकी सखी वानर रूप धारण करके आप दोनों के वीच में हूँ। कान्ति वल प्रभावयुक्त मेरे द्वारा अर्थात् मेरी सहायता से आप दोनों अङ्गों से संयुक्त हो जाय अर्थात् मैं अपने वल से आपको श्रीरामजी के यहां पहुँचा सकता हूँ। इस प्रकार संयुक्त होने पर अर्द्धाङ्गिनी के साथ यज्ञादि कर्म करने से श्रीरामजी देवों

के अत्यन्त प्रिय होंगे, तथा आप पुत्रोत्पत्ति होने से स्वगृह में वीरवती प्रसिद्ध रहेंगी। इसी प्रकार का अर्थ नीलकण्ठ जी ने भी किया है। अतः विस्तार भय से लिखा नहीं।

इस जगह पर श्रीहनुमानजी का अपने को सखी रूप में बताना यह आत्मा का सहज स्वरूप चित-शक्ति होना स्वाभाविक है। जैसा कि कठ० २-१-७ में लिखा है–

या प्राणेन सम्भवत्यदिति र्देवता मयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभि र्व्यजायत्॥

अर्थात् जो आत्मा अदिती नाम से प्राण रूप में प्रकृतिकी देवता वनी माया गुफा में प्रवेश करके पञ्चभूतों द्वारा कर्म बन्धन में पड़ गई।

गीता में भी अ० ७

अपरेय मिति स्त्वन्यां प्रकृतिं बिद्धिमेपराम्।
जीवभूता महावाहो ययेदं धार्यते जगत्॥५॥

अष्टधा प्रकृति अपरा है। इससे परे परा प्रकृति है। जिसके द्वारा जीव रूप होकर मेरा यह जगत् धारण किया जाता है॥५॥ यहां आत्मा को परा प्रकृति कहे हैं। ऐसा ही पातञ्जली योग सूत्र में भी–
"चिच्छक्तेः, चितशक्ति आत्मा को लिखा है।

भीतर दीपक की तरह से प्रकाश करता है तो तब उस भगवत धाम के भीतर में रहने वाले परमात्मा को यह आत्मा प्राप्त कर सकता है।

संचितं संचितं पूर्वं भ्रमरो वर्तते भ्रमन्।
योभिमानीव जानाति न मुह्यति न हीयते ॥३७॥

भ्रमर जिस प्रकार पहले फूल २ प्रति रस इकट्ठा करके तब अपने घर में भुन्भुनाता है वैसे ही भक्त गुरु कृपा से मन्त्र के अर्थों को इकट्ठा करके हृदय के भीतर अर्थ पञ्चक को निश्चय कर लेने के बाद में तब अकार त्रय सम्पन्न होकर जीवन मुक्त होता है। उस अवस्था में भक्त फिर नकभी संसारमें मोह में पड़ता है और न भक्त को कोई घाटा होता है। यही स्वरूपाभिमान है।

अस अभिमान जाय जनि भोरे, मैं सेवक रघुपति पति मोरे

न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनं हृदा मनीषा पश्यति रूपमस्य
ईज्यते यस्तु मन्त्रेण यजमानो द्विजोत्तमः ॥३८॥

उस परमात्मा को कोई भी अपने चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकता है। अन्तःकरणमें निर्मल बुद्धि द्वाराही

उसके रूप को ज्ञानी पुरुष देख पाता है। उस परमात्मा का मन्त्र द्वारा यजन किया जाता है। श्रेष्ठ द्विज ही उसका भजन करते हैं।

नैव धर्मी नचाधर्मी द्वन्द्वातितो विमत्सरः।
ज्ञान तृप्तः सुखं शेते ह्यमृतात्मा न संशयः ॥३६

इस प्रकार के भाव विलीन महाआत्मा का मन मात्सर्य रहित ज्ञान से तृप्त होकर संशय रहित आनन्दामृत सुख समुद्र में सोया हुआ तैं, तोर, मैं, मोरादिक द्वन्द धर्मा धर्म रहित होता है।

यह हिरण्य सदन श्री हनुमानजी का स्वयं रूप ही है क्योंकि मानस रामायण में लिखा है कि-

वन्दौ पवन कुमार खलवन पावक ज्ञान धन।
जासु हृदय आगार वसहिं राम सर चाप धर॥

ऐसा श्री गोस्वामी जी ने लिखा है तथा और भी

अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभदेहं,
दनुज बन कृशानु ज्ञानिनामग्रगण्यम्॥
सकल गुण निधानं वानराणामधीशं,
रघुपति वर दूतं वात जातं नमामि॥

बलकी अतुलता श्रीराम के आप हनुमान धाम हैं। स्वर्ण पर्वताभदेह हिरण्य सदन हैं। परमात्माके गुण रत्न हैं। बानरों के राजा हनुमान खजाना हैं। ज्ञानी जनों के आगे आप हनुमान ज्ञान अग्नि हैं जो पाप रूप दनुजबन को जला देते हैं। सूक्ष्म बुद्धि वाले वायु पुत्र श्रीसीतारामजी के दूत सर्व लोक गुरु श्री हनुमान सभी आत्माओं के आत्म दीपक हैं। अतः हिरण्य सदन हैं। इसी महाभारत के वन पर्व में १४८ अध्याय में श्रीहनुमानजी श्रीप्रसादा हैं यह भी लिखा है-

सीता प्रसादाच्च सदामामिहस्थ मरिन्दम।
उपतिष्ठन्ति दिव्याहि भोगाभीमयथेप्सिताः ।।१८।।

अनन्तश्रियों की श्रीसीताजी के प्रसाद से मुझे सब भोग इस मेरे पास ही मनमाना प्राप्त होते हैं। अतः मैं श्रीप्रसादा हूँ यह श्री प्रसादा नाम पड़ने का कारण है।

श्रीमद्वाल्मीकीय में श्री हनुमानजी की मान्यता किष्किन्धा काण्ड सर्ग ३ में-

कपि रूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतात्मजः ।
भिक्षु रूपं ततो भेजे शठ बुद्धितया कपिः ।।२।।

सर्व प्रथम श्रीराम समीप आते श्री हनुमानजी ने वानर रूपको त्यागकर भिक्षु रूप अर्थात् ब्राह्मण रूप को धारण किया क्योंकि दो का मेल करना है। आप सूक्ष्म बुद्धि के हैं शठका अर्थ मध्यस्थ भी होता हैं। हरेक कार्यों में आपको मध्यस्थ होना है।

नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः ।
नासाम वेद विदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ।।२८।।

श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीहनुमानजी की प्रशंशा की कि हे लक्ष्मण ये हनुमान जिस तरह से बोल रहे हैं। ऐसा भाषण ऋग्वेद यजुर्वेदादि सर्व शास्त्र पढ़े विना कोई नहीं बोल सकता है।

नूनं व्याकरणं कृत्स्न मनेन बहुधा श्रुतम् ।
वहु व्याहरता नेन न किञ्चिदपशद्वितम् ।।२६।।

निश्चय है इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणों को अनेक प्रकारसे सुना है। क्योंकि बहुत बातोंको कहते हुये भी कोई अपशब्द इनके मुखसे नहीं निकला। ये हनुमान

भारी विद्वान और सतलक्षण सम्पन्न हैं। यह श्री राम मुख से प्रसंशा पूर्ण आचार्यत्व का लक्ष है।

श्रीसीता प्राप्ती का उपाय श्रीराममन्त्र स्वरूप अंगूठी भी श्रीहनुमान को ही श्रीराम ने दी।

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अंगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥१२॥

श्रीराम मन्त्र स्वरूप अंगूठी को श्री राजपुत्री सीताके परिचायक होगा। इस निश्चय पर अति प्रसन्न होकर श्रीरामजी श्रीहनुमानजी के लिये दिये ॥१२॥ और कहे भी–

अनेन त्वां हरि श्रेष्ठ चिन्हेन जनकात्मजा ।
मत्सकशादनुप्राप्त मनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥१३॥

हे वानर श्रेष्ठ इस चिन्ह के द्वारा श्री जानकी जी आपको मेरे भेजा हुआ मानकर निश्चिन्त होकर देखेंगी बात करेंगी। ये दो श्लोक कि० अ० ४४ के हैं।

श्री जानकीजी भी इस अंगूठी प्रभाव से श्री हनुमानजी को अपने से बात करने लायक समझी है।

बाल्मी० सुन्द० स० ३६

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः कर विभूषितम ।
भर्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदिता भवत् ॥८॥

श्रीहनुमानजी के हाथ से अंगूठी रूपमें श्रीराम जी की प्राप्ती मानकर श्रीजानकी जी श्रीहनुमानजी को अपनी सखी श्रीचारुशीलाजी मानकर आनन्दित हुई। तभी तो इस प्रकार से बोली—

परिश्रमाच्च सुप्ता हे राघवांकेऽस्म्यहं चिरम् ।
पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्के भरताग्रजः ॥२१॥

श्रीहनुमानजी से जब अंगूठी से परिचय प्राप्त किया तो तब आपसे भी मुझे श्रीरामार्थ परिचय मिलना चाहिए। इस प्रकार श्रीहनुमानजी के कहने पर श्रीसीता जी बोलीं कि– मैं परिश्रम से थक कर जब श्रीप्रीतम के अङ्क में बहुत काल तक सो गई। तब प्रीतम भी अपनी बारी से मेरे अङ्क में सो गए थे। यही हम लोगों का एकान्त मर्म स्थान पर वह इन्द्र का बेटा जयन्ता दुष्टता किया तब श्रीरामजी ने एक तृण को ब्रह्मास्त्र बनाकर इन्द्र पुत्र को अपनी

महिमा। दिखाई। इस मर्म को श्रीलक्ष्मण भी नहीं जानते हैं। ऐसी बात पति ब्रतास्त्री किसी पुरुष से नही कह सकती है। इसी लिये तो श्री हनुमान जी कहते हैं-

मयेय मसहायेन चरता काम रूपिणा।
दक्षिणा दिगनु क्रान्ता त्वन्मार्ग विचयैषिणा।।७६।
।। सु० स० ३५।।

इच्छामई रूप धारण करने वाले मैने किसी की भी कोई सहायता की आवश्यकता न रखकर इस दक्षिण दिशा का आपको खोजने के लिये आक्रमण किया है।

इसी वात को श्रीरामजी भी कहते हैं-यु० स० १

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद्भुवि दुर्लभम्।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले।।२।।

भुवि दुर्लभ जो कार्य अन्य मन से भी नहीं कर सकता है। वह श्रीहनुमानजी ने किया।

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः।
बैदेह्या दर्शने नाद्यः धर्मतः परिरक्षिताः।।११।।

श्रीहनुमानजी ने आज वैदेही जी के दर्शन से मुझे व रघुवंश तथा लक्ष्मण का धर्म पूर्वक परिरक्षण किया।

इदं तु मम दीनस्य मनोभूयः प्रकर्षति।
यदिहास्य प्रियाख्यातु र्न कूर्मि सदृशं प्रियम् ।।१२।।

मुझदीन का मन इस प्रिय कार्यका प्रत्यूपकार करने के लिए व्याकुल हो रहा है अतः।

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनुमतः।
मया काल मिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः ।।१३

प्रत्यूपकार में मैं अपना सर्वस्वभूत अपने को यह समय पाकर महात्मा श्रीं हनुमानजी के लिये आलिगन दे दिया हूँ।

इत्युक्त्वा प्रीति हृष्टांगो रामस्तं परिषस्वजे।
हनुमन्तं कृतात्मानं कृत कार्यमुपागतम् ।।१४।।

इतना कहकर श्रीरामजी अति अनुराग में गद् गद् होकर कार्य करके आये हुये कृतात्मा श्रीहनुमान जी को अपने हृदयसे लगाकर गाढ आलिङ्गन किये–

फिर श्रीरामजी कहते हैं–

उत्तर० स० ३५

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णो र्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनुमतः ॥८॥

जो कर्म संग्राम भूमिमें श्रीहनुमानजी के प्रत्यक्ष देखे गये हैं। वैसा कर्म कभी कान से सुनने को न तो काल का न इन्द्र का न विष्णु भगवान का न कुबेर का ही मिला।

एतस्य वाहु वीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि वान्धवाः।९।

इन्हीं श्रीहनुमानजी के भुज वलसे मैंने लङ्का व सीता व लक्ष्मण तथा विजय और श्रीअयोध्या का राज्य व मित्र तथा वन्धुवर्ग सब प्राप्त किया है।

हनुमान मे यदि नस्या द्वानराधिपतेः सखा।
प्रवृत्ति मपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान्भवेत्॥१०

यदि मेरे पास वानरराज सखा श्रीहनुमान न होते तो तब श्रीजानकी जी का पता भी कौन लगा सकता था। और भी सर्ग ४०

एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥२३॥

हे कपे आपके प्रति एक उपकार पर तो मैं अपने प्राणों को दे देता हूँ और अधिक उपकारों के लिये मैं अपने परिवार के सहित तुम्हारा ऋणियां हमेशा रहूँगा।

मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयो यकृतं कपे ।
नरः प्रत्युपकाराणा मापत्स्वायाति पात्रताम् ।।२४

हे हनुमान आपके उपकार का कर्जा मेरे अङ्ग में जीर्ण हो जावे। मैं तुमसे उऋण होना नहीं चाहता हूँ क्योंकि उऋण तभी हुआ जा सकता है, जब धनिक में भी विपत्ति आवे। अतः न तुममें विपत्ति आवे न मैं उऋण हों। आपका ऋणियां बना रहना चाहता हूँ।

ततोऽस्य हारं चन्द्राभं मुच्य कण्टात्सराघवः।
वैदुर्यं तरलं कण्ठे ववन्ध च हनूमतः ।।२५।।

इतना कहकर श्रीरामजी ने अपने कण्ठ से चन्द्र माला प्रकाशमान हार को उतार कर वैदुर्य मणि सम प्रकाशमान श्रीहनुमानजी के पीले कण्ठ में पहरा दिया।

तेनोरसि निवध्देन हारेण महता कपिः ।
रराज हेम शैलेन्द्र श्चन्द्रेणाक्रान्त मस्तकः ।।

स्वर्ण पर्वत के शिखर सदृश श्रीहनुमानजी के मस्तक में वह श्रीरामचन्द्र प्रदत्त चन्द्रहार चन्द्रमण्डल से घिरा सदृश प्रकाशमान हो गया। यह दृश्य देख कर श्रीरामराज सभा में सभी लोग अति हर्ष से उठ उठकर नृत्य करने लगे सबने श्रीराम चरणों में प्रणाम किया।

अपने आश्रित जनों की रक्षा के लिये भी श्री राम जी श्रीहनुमानजी को ही देखते हैं नियुक्त करते हैं। जैसा कि श्रीमद्वाल्मीकीय युद्ध काण्ठ सर्ग १२५

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः ।।
प्रियकामः प्रियं राम स्तत स्त्वरित विक्रमः ।।१।।

वन यात्रा से लौटकर भरद्वाजाश्रम में से श्री अयोध्या की तरफ दृष्टि करने पर अपने प्रियजनों भरतादिकों का प्रिय करनेकी इच्छासे शीघ्र पराक्रमी श्रीराम।

चिन्तयित्वा ततो दृष्टि वानरेषु न्यपातयत ।
उवाच धीमांस्तेजस्वी हनुमन्तं प्लवंगमम् ।।२।।

कुछ चिन्ता में पड़कर बानरों की तरफ दृष्टी करके बड़े बुद्धिमान व तेजस्वी तथा कूदकर आकाश से चलने वाले श्रीहनुमानजी से बोले ॥२॥

अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवग सत्तम ।
जानीहि कच्चित्कुशली जनो नृपति मन्दिरे ॥

हे प्लवगों में श्रेष्ठ श्रीहनुमान आप शीघ्र त्वरा से श्रीअयोध्या जाकर राजा श्रीभरतजी के मन्दिर में देखकर पता लगाओ कि क्या भक्त जन सब कुशल से तो हैं? और शृंगवेर पुर निषादराज को मेरा कुशल कहना, मेरे कहने पर वे आपको श्री अयोध्या वाशियों का सब समाचार बतावेंगे। क्योंकि निषाद राज मेरे प्राणप्रिय सखा हैं। मेरी कुशल सुनकर अति प्रसन्न होवेंगे, और श्रीभरतजी के पास जाकर मेरी सब कुशल सुनाना—बानरों के साथ राजा सुग्रीव व राजा विभीषण के साथ आ रहे हैं। श्रीरामजी सब शत्रुओं को जीत लिये हैं। ऐसा समाचार सुनकर तब श्रीभरतजी की भावना क्या होती है। इस बात का चेष्टाओं से पता लगाते रहना फिर आकर श्री भरतजी के भावों का समाचार आकर मुझको देना क्योंकि खानदानी राज्य में किसका मन न लगेगा।

एतच्छ्रुत्वा यमाकारं भजते भरत स्ततः।
स च ते वेदितव्यः स्यात्सर्वं यच्चापि मां प्रति ॥१४

यदि भरत जी का मन राज्याशक्त हो तो शीघ्र समझकर आप मुझे खबर दो, मैं यहीं से बन लौट जाऊँगा। इस प्रकार का भक्तों का भाव श्रीरामजी श्री हनुमानजी के ही द्वारा प्राप्त करते हैं। स्वयं सर्वज्ञ होते हुये भी श्रीहनुमानजी द्वारा सफाई के विना किसी को भी स्वीकार नहीं करते हैं। यह है श्री राम दरबार में श्रीहनुमानजी की मान्यता तिस पर भी अभागे लोग श्रीहनुमानजी को नीचा दिखानेकी कलम उठाते हैं। जन्द्रकला परत्व प्रकसिका प्रमाण है।

श्रीभरतजी ने श्रीहनुमानजी की पूजा की—

देवो वा मानुषो वा त्व मनुक्रोशादिहागतः।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥
गवां शत सहस्त्रं च ग्रामाणां च शतं परम्।
सकुण्डलाः शुभाचारा भार्या कन्यास्तु षोडश ॥४४॥

श्रीराम समाचार सुनते ही श्रीभरत जी उठकर आदर किये और कहे कि हे सौम्य आप चाहे देवता

हों चाहे मनुष्य हों परन्तु मेरे ऊपर अतिशय कृपा करके आप यहां आये हैं। अतः मैं आपकी पूजा में एक लाख गौ तथा सौ ग्राम अर्पण करके शुभाचार सम्पन्ना षोडश कन्या पत्न्यर्थं भेंट करता हूँ कहा—

श्रीगोस्वामीजीका लेख— मानस० उत्तर० दोहा २६ में

श्रीहनुमानजी के ही द्वारा श्री युगल सरकार की कृपा सबको प्राप्त होती है।

भरत शत्रुहन दूनों भाई,
सहित पवन सुत उपवन जाई।
बूझहि बैठि राम गुन गाहा,
कह हनुमान सुमति अवगाहा।

-: दोहा ३६ में :-

सनकादिकं विधि लोक सिधाये,
भ्रातन राम चरन शिर लाये।
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाही,
चितवहि सब मारुत सुत पांही।
सुनी चहहि प्रभु मुखकै बानी,
जो सुनि होइ सकल भ्रमहानी।

अन्तरयामी प्रभु सब जाना,
बूझत कहहु काह हनुमाना।
जोरि पानि तब कह हनुमन्ता,
सुनहु दीन दयाल भगवन्ता।
नाथ भरत कछु पूछन चहई,
प्रशन करत मन सकुचत अहई।
तुम जानहु कपि मोर सुभाउ,
भरतहि मोहि कछु अन्तर काउ।
सुनि प्रभु वचन भरतगहे चरना,
सुनहु नाथ प्रनतारति हरना।
नाथ न मोहि सन्देह कछु,
सपनेहु शोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारि ही,
कृपानन्द सन्दोह ॥३६॥

–: दोहा ५० में :–

हनुमान भरतादिक भ्राता,
संग लिये सेवक सुख दाता।

भरत दीन्ह निज वसन डसाई,
बैठे प्रभु सेवहि सब भाई।
मारुत सुत तब मारुत करई,
पुलक वपुष लोचन जल भरई।
हनुमान सम नहि बड़भागी,
नहि कोउ राम चरन अनुरागी।
गिरजा जासु प्रीति सेवकाई,
वार वार प्रभु निज मुख गाई।

इस प्रकार श्री हनुमान जी का गुण शङ्करजी पार्बतीजी को सुनाये।

-: लङ्का काण्ड में दोहा ६३ :-

है दश शीश मनुज रघुनायक,
जाके हनुमान से पायक।

यह श्रीरामजी की बड़ाई श्री हनुमानजी द्वारा कही है।

इसको कहते हैं- तत्सुख प्रधान स्वसुख तत्कृपा लब्ध

आत्मा परमात्मा के लिये जब अपने को शुद्ध भाव से अर्पण करता है तो तब परमात्मा भी यह प्रतिज्ञा किए हुये हैं कि-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्,
भावबस्य भगवान सुख निधान करुणाभवन।
तजि ममता मद मान भजिय सदा सीतारमण।

जिनकी रही भावना जैसो,
प्रभुमूरति तिन देखी तैसो।

संसाराशक्त मनुष्य अपने स्वरूप की यथार्थता को देखे बिना कैसे संसार से सर्वथा विरक्त हो सकता है। इम प्रशन का उत्तर श्री गीताजी में लिखा है-

अ० २ श्लोक ५९

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रस वर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्टया निवर्तते॥

अर्थात् इन्द्रियोंको आहार न मिलने पर इन्द्रियायै विषयों से निवृत्त तो हो जाती है। परन्तु मन की विषय चाहना समाप्त नहीं होती है। परन्तु यदि परमात्मा का दर्शन हो जाता है तो तब शुद्ध अपने लिये वैराग्य और परमात्मा के लिये सहज अनुराग हो जाता है। उस अनुरागावस्था में आत्मा परमात्मा के लिये उसी प्रकार मे हो जाता है जैसे धन धनिक के लिये कामिनी कामी के लिये होते हैं। श्रीराम सर्व लोक रमणशील हैं।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदे नासौ परब्रह्माभिधीयते ।।

सच्चिदानन्द धन परमात्मा श्रीराम में योगिजन रमण करते हैं। श्रीराम सब में रमते हैं।

रामो रमयतां वरः श्रीवाल्मीकीय में २-५३-१।
५-२७-२५।७-४२-२१। ७-४६-३१।७-५६-२३।
२-६१-१।
इन छः जगहों पर लिखा है। अतः रमणशील राम का रम्य होना आत्मा का परमात्मा के लिये आत्म समर्पण कहा जाता है।

इसी भाव पर गीता अ० ३ श्लोक १७ में लिखा है-

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्ट स्तस्य कार्यं न विद्यते ।।१७

अन्तरात्मा के भीतर जिसको अनुराग तृप्ती सन्तोष का सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त हो गया है वह कर्म बन्धन से मुक्त है। परन्तु आचार्यमान पुरुषो वेद छान्द० ६-१४-२।

गुरु बिन भवनिधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई।।

अंजन काह आंख जेहि फूट्यो।

गुरु को आंख वाला चेला को कान वाला होना जरूरी है। नहीं तो-

हरै शिष्य धन शोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक मह परई॥

अगस्त्य संहिता स्तवक ३९ में

❋ श्री जानकीजी की अष्ट मुख्य यूथेश्वरी ❋

॥ श्री पार्बत्युवाच ॥

ब्रूहि भो कृपया स्वामिन्नामधेयानि चाद्यमे।
जानक्या अष्टमुख्यानां सखीनां करुणानिधे॥

श्रीपार्वती जी प्रश्न करती हैं— हे स्वामिन् श्री जनकराज किशोरी जू की अष्ट प्रधान यूथेश्वरियों के नाम कृपा करके कहिये, और हे करुणानिधे॥१॥

जननीजनकानाञ्च नामानि शुभदानिच।
कथयस्व महादेव ज्ञात्वा मामनु गामिनीम्॥२॥

इन सखियों के माता पिता के शुभ देने वाले नामों को भी अपनी अनुगामिनी जानकर मुझसे कहिये॥२॥

जन्मर्क्षं मासपक्षौ च योगलग्नानि कथ्यताम् ।
पुनर्जन्मव्रतारम्भस्तासां तत्फलनुत्तमम् ॥३॥

तथा उनके जन्म, नक्षत्र, महीना, पक्ष, योग, लग्न, पुनः इनके जन्म के व्रत कैसे आरम्भ किये जावें उस व्रत का उत्तम फल क्या है। हे महादेवजी यह भी कहिये ॥३॥

॥ श्री शिव उवाच ॥

प्रसन्नोऽस्मि महादेवि लोकानां हितकारकम् ।
अशेषेण प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सावधानतः ॥४॥

श्री शिवजी बोले कि महादेवि मैं अति प्रसन्न हूँ अतः सर्व लोक हितकारक आपके इस प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण मैं दूँगा । सावधान होकर आप सुनिये ।

नाम्ना तु शत्रु जिद्वीरो निमिवंश्यो महाबलः ।
तस्य भार्या चन्द्रकान्तिः पतिसेवाविचक्षणा ॥५॥

एक निमिवश में महा बलवान श्री शत्रुजित नाम से प्रसिद्ध महाराज हुये उन्हीं की पति सेवा प्रवीणा श्री चन्द्रकान्ति जी भार्य्या रहीं ॥५॥

तस्यां जाता चारुशीला जानकीप्राणवल्लभा।
वैशाखे चोत्तमे मासे पूर्णिमायां शुभग्रहे ।।६।।

इन्हीं की कन्या श्री जनकात्मजा जू की अतिशय प्रिया श्री चारुशीला जू सर्वोत्तमा वैशाख मास के पूर्णिमा के दिन शुभ, ग्रह, योगमें आविर्भाव भई ।।६।।

चित्रायां चन्द्रवारे चधनुर्लग्नेधन प्रदे ।
ततो सेवा धनं प्राप्तं जानक्याः कमलाश्रयम् ।।७।

चित्रा नक्षत्र चन्द्रवार धन के देने वाले धनुलग्न में आविर्भाव होकर श्री स्वामिनी जू की सेवा रूपी धन के लिए श्री महालक्ष्मीजी भी आपका आश्रयण करती हैं अर्थात् आपकी स्तुति करती हैं ।।७।।

निमिवंश्योयशश्शाली विदग्धा तस्यतु प्रिया।
तस्यांशुभदिने जाता लक्ष्मणा शुभलक्षणा ।।८।।
कृष्णाष्टम्याँ ज्येष्ठमासे कुजवारे शुभग्रहे ।।
श्रवणे मेषलग्ने चसिद्धयोगे शुभप्रदे ।।९।।

इसी तरह निमिवंश में श्री यश.शालि जी और उनकी पत्नी श्री विदग्धा जी हुई। इनकी कन्या ज्येष्ठ मास, कृष्णपक्ष, अष्टमी तिथि मंगलवार आदि मेष लग्न, श्रवण नक्षत्र सिद्धिप्रद सिद्ध योग में शुभ लक्षणा श्री लक्ष्मणाजी प्रगट हुईं ।।८-९।।

पुनश्चैकोमहाराजो निमिवंश्योऽरिमर्दनः।
तस्य भार्य्या च शुभदा अतीव पतिवल्लभा ॥१०॥

पुनः निमिवंश में महाराज श्री अरिमर्दन जी उनको अति प्रिया भार्य्या श्री शुभदाजी अत्यन्त अपने प्राणबल्लभ की प्रिया रहीं ॥१०॥

आषाढ़े शुक्लपक्षे च नवम्यां सोमवासरे।
रेवत्यां सिंहलग्ने चशुभयोगे, शुभप्रदे ॥११॥
तस्यां शुभदिने जाता नाम्ना हेमा सुकन्यका।
सर्वविद्याविनीता चकलासु कुशला सखी ॥१२॥

इनके गर्भ से आषाढ़ महीना, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि सोमवार, रेवती नक्षत्र, सिंह लग्न और शुभ देने वाले शुभयोग में सर्व बिद्यामें प्रवीणा सब कला में कुशला श्रीमिथलेश नन्दिनी जू की प्रिय सखी श्री हेमा जू का जन्म हुआ ॥११-१२॥

तथा चैकोमहावीरोविजैशीलश्च नामतः।
तस्य कांता सुवृत्ता च गुणरूपसमावृता ॥१३॥

एवं निमिवंश के एक महावीर्य्यवान महाराज विजैशीलजू इस नाम से प्रसिद्ध हुये उनकी गुणरूप युक्ता श्री सुवृता जी भार्य्या हुईं ॥१३॥

तस्या क्षेमकरी जाता नाम्ना क्षेमा सुकन्यका।
गुणरूपसमायुक्ता जानकीप्राणवल्लभा ।।१४।।

उन्हीं की कन्या सर्व जगत की क्षेम करने वाली गुण, रूप संयुक्ता श्री जानकी जू की प्राण बल्लभा सहचरी श्री क्षेमा जू प्रगट हुईं ।।१४।।

शुभे श्रावणके मासे शक्लाष्टम्यां शुभग्रहे ।।
विशाखायां चन्द्रबारे मीन लग्ने शिवे तथा ।।१५

इनके जन्म का समय श्रावण मास, शुक्लाष्टमी विशाखा नक्षत्र चन्द्रवार कल्याणप्रद मीन लग्न है ।।१५

पुनश्चैको महाराजो महीमंगलनामकः।
तस्य प्रिया मोदिनी च पंचम्यां रविवासरे ।।१६।।

पूर्वभाद्रपदे भे च योगे सिद्धिशुभप्रिये।
मेषलग्ने वरारोहा साभवज्जानकी प्रिया ।।१७।।

पुनः निमिवंश ही में महीमंगल नामके एक महाराज हुये तिनकी परमप्रिया भार्य्या श्रीमोदिनी जी रहीं। उनके गर्भ से भाद्रपद महीना, पञ्चमी तिथि पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र, रविवार, सिद्धि योग, मेष लग्न में श्री विदेह राजकुमारीजू की अति प्रिया श्री बरारोहा जी प्रगट हुईं ।।१६-१७।।

तथा चैको महाराजो निमिवंम्योवलाकरः।
तस्य भार्य्याशोभनांगी गुणरूपविभूषिता ।।१८।।

उसी प्रकार इसी वंशमें श्री बलाकर महाराज और गुण रूप भूषिता श्री शोभनाङ्गी जी उनकी धर्म पत्नी हुई ।।१८।।

तस्यां जाता पदम्गंधा नाम्नानामार्थसंवृता।
पद्मपत्र समाकारा पद्मकेलिबिचक्षणा ।।१९।।

इन्हीं की कन्या कमल के पत्र के समान कोमल और सुगधिविशिष्ट अङ्गवाली तथा कमलों को लेकर दिव्य दम्पति केलि में परम प्रवीणा श्री पद्मगंधाजी हुई ।।१९।।

आश्विने च सिते पक्षे सप्तम्यां गुरुवासरे।
पूर्वा भाद्रपदे भे च मीनलग्ने शुभग्रहे ।।२०।।

इनका जन्म समय आश्विन महीना, शुक्ल पक्ष सप्तमी तिथि गुरुवार पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र मीन लग्न माना गया है।२०।

पुनश्चैको महाराजस्तेजः शाली महाबलः।
तस्य प्रियाविशालाक्षी विलक्षणगुणान्विता ।।२१

पुनः एक महाबल वाले श्रीतेजशालीजी महाराज इसी निमिवंश में हुये जिनकी विलक्षण गुणयुक्ता श्री विशालाक्षी जी महारानी हुईं।२१।

तस्यां सुलोचना नाम्ना जातापुत्री सुलक्षणा।
गुणरूपसमायुक्ता जानकीप्रेमविह्वला ॥२२॥

उन्हीं के गर्भ से श्री सुलोचना जी प्रगट हुईं जो सर्व लक्षण सम्पन्ना गुण रूप से युक्त तथा श्री जनक किशोरी जू के प्रेम में विह्वल रहा करती हैं ॥२२॥

कार्तिके शुक्लपक्षे च नवम्यां भौमवासरे।
रोहिण्यांदेवलग्ने च साध्ययोगे शुभग्रहे ॥२३॥

इनका जन्म कार्तिक महीना शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि भौमवार रोहिणी नक्षत्र, बृश्चिक लग्न, साध्य योग, इन सब शुभ ग्रहों में हुआ है ॥२३॥

ततश्चैकोमहाराजो महावीर्य्योप्रतापनः।
तस्यभार्याविनीता सा नामार्थगुणसंयुता ॥२४॥

तिसके बाद महावीर्य वाले एक महाराज अरितापन नामसे विख्यात हुए जिनकी भार्या नामार्थ गुण सम्पन्ना श्री विनीता जी हुईं ॥२४॥

तस्यां श्रीशुभगा जाता सर्वसौभाग्यसंयुता।
सर्वसद्गुणसम्पन्ना सर्वविद्याविशारदा ।।२५।।

तिनहीं की कन्या सर्व विद्या में प्रवीणा सर्व सदगुण सम्पन्ना एवं सर्व सौभाग्य युक्ता श्री शुभगा जी हुई ।।२५।।

मार्गशीर्षे सिते पक्षे नवम्यां चन्द्रवासरे।
पुष्ये भे वृषलग्ने च साध्ययोगेद्विविग्रहे ।।२६।।

इनका जन्म समय अगहन महीना, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि, चन्द्रवार, पुष्य नक्षत्र, साध्ययोग द्विस्वभाव लग्न माना गया है ।।२६।।

अष्टाविति सखीमुख्या जानक्याः करुणानिधेः ।।
एतासामपि सर्वासां चारुशीला महत्तमा ।।२७।।

करुणावती श्री मिथलेश किशोरी जू की यही आठ मुख्य सखी हैं अर्थात् यूथेश्वरी हैं। इन सबों में प्रधान महत्वशालिनी श्री चारुशीला जी हैं ।।२७।।

उसी श्री अगस्त संहिता के ८ स्तवक में यह लिखा है

लक्ष्मणस्तु सखी रूपधारी भूद्रत्न मण्डपे।
स्वदेहात्तु सखी रन्याश्चात्मीया रास मण्डले ।।५५

उस समय में उस रास मण्डल में श्री लक्ष्मण जी ने अपना सखी रूप धारण किया तथा अपने अङ्ग से अपने समान रूप गुण वाली बहुत सी सखियां प्रगट की ।।५५।।

लक्ष्मणा लक्ष्म युक्ता च नाम्ना ख्याता निजस्थले।
तदाभरत शत्रुघ्नौ सखी रूप धरौ स्थितौ ।।५६।।

श्री लक्ष्मण जी लक्ष्मणा नामक सखी रूप से अपने सेवा स्थल पर और तदनन्तर श्रीभरतलालजी व शत्रुघ्न जी सखी रूप धारण करके अपने-अपने सेवा स्थल पर उपस्थित हो गये ।।५६।।

शुभगा सर्व सौभाग्य सद्गुणानां शुभस्थली।
तथैव नाम हेमा च महा ऐश्वर्यभृत्तथा ।।५७।।

श्री भरत जी शुभगा नाम की सखी हो गये जो शुभगा सर्व सौभाग्य तथा अन्य भी सर्व सद्गुणों को पैदा करने वाली सद्गुणों की भूमि है उसी प्रकार शत्रुघ्न जी भी श्री हेमा नाम की सखी होकर महा ऐश्वर्य का प्रकाश करने लगी ।।५७।।

निजा निजा स्तास्तु सखी समस्ता,
प्रकाश्य स्वे स्वे मणि रत्न मण्डपे।

ता मणिमण्डपेषु
ासं सुतरां प्रचक्रुः ।।५८।।

समस्त निजी स्वरूपों की सखियां
मणिरत्न जड़ित मण्डपों में सुशोभित
ण मण्डपों में उन समस्त रामागणों
कि रासलीला बिलासों को विस्तार

ाशो मणि मण्डपेषु,
द्यौ स्सुजले स्थलेषु।
तन्त्र स्मृनि वेद शास्त्रै,
ङ्घैश्च शुभै स्तरङ्गैः ।।५६।।

रास पुराण तन्त्र शास्त्र स्मृत्ति वेद
ं के समूहों और शुभलीला चरित्रों से
जल स्थल में पृथक २ मणि मण्डपों में
ा ।।५६।।

मायणान्तर्गत अध्याय २४ में भी

वामिनी सीता श्रीराम प्राण बल्लभा।
तयन क्वापि जीवावस्थां विचार्य च।१

है यह छठी सखी है। आगे इसी पृष्ट में पंक्ति ३८ में- कोउ कहं शंकर चाप कठोरा येश्यामल मृदुगात किशोरा ।। यह सातवी सखी का नाम सुलोचना है। इसकी माता का नाम त्रिलक्षा है पिता का नाम तेजस्थ (तेजशाली) है आगे पृष्ट २३१ पक्ति २० में 'यह सुनि अपर कहै मृदुबानी यह आठवीं सखी का नाम शुभगा है। माता का नाम विनीता पिता का नाम महावीर्य है।

आगे पृष्ट २३४ पंक्ति २५ में भी पियूषकार लिखते हैं कि- ये आठों सखियां मिथलेश जी के विमातृ आठ भाइयों की कन्यायें हैं जो श्री किशोरी जी की प्रधान सखियों में हैं। इनके नाम-श्रीचारुशीला जी श्रीलक्ष्मणाजी श्रीहेमाजी श्रीक्षेमाजो श्रीवरारोहा जी श्रीपद्मगन्धाजी श्रीसुलोचनाजी श्रीशुभगाजी यह श्री बैजनाथजी के मत से लिखा गया है और आगे पृष्ट २६४ में पंक्ति ३१ से आगे लिखा कि- संग सखी सब सुभग सयानी, चौपाईमें प्रधान सखी श्रीचारुशीला जी हाथ में सोने की झारी लिये हैं। लक्ष्मणाजी अर्घ पाद्यपात्र, हेमाजी हेमथाल में गन्धफूल पात्र, क्षेमाजी धूप दीपदानी, वरारोहा जी माधुपर्क, पद्मगन्धा जी

फूल माला सुलोचनाजी छत्र शुभगा जी चामर लिये हुये साथ है। श्रीअगस्त्य संहिता अध्याय ४६ श्लोक ५ से २८ में क्रमशः श्रीचारुशीला लक्ष्मणादि आठों का नाम व माता पिता का नाम व जन्म तिथि का नक्षत्रादि पूजा विधान का प्रमाण अगस्त्य संहिता में है। ऐसा लिखा है मय श्लोक के अगस्तजी की भावना लिखा है। मानस पियूष गोरखपुर गीता प्रेस द्वारा रूस अमरीकादि विदेशों में भी यह बात प्रचार है।

श्री युगलानन्य शरण जी इस्ककान्ती में कवित्त

भटकत भरम भवन में अटकत लटकत मन मति कांची।
फटकत तुष फोकट विद्या विनु अटपट वदत अवाची ।।
खटपट करत सरस सज्जन से विषम विजय शिर नाची
युगलानन्य सार सर्वोपर रसिक सम्प्रदा सांची ।।
श्रीसीता स्वामिनी सम्प्रदा विदित वेद विद जाने।
महा शम्भु हनुमन्त रसिक शिरताज अगस्त्य बखाने ।।
तिनके पद प्रसाद से मुनिवर मन्त्र महा रस छाने।
युगलानन्य शरण कलि कायर वकत आन की ताने।

श्री युगल बिनोद विलास प्रथमाध्याय में भी

नित्य सुपरिकर वृन्द वीच राजत हौ सन्तत।
नाम ललित मुद मिलित चारुशीला सत सम्पत ।।

यूथेश्वरी प्रधान निकर परिकर पद पूजित ।
युगल विलास विचित्र विमल बानी कल कूजित ॥२८
सन्तत नौमि सनेह सहित रासेश वेष वर ।
सुकुमारी सिय सहित प्रान बल्लभ विनोदकर ॥
तेहि थल सखा सजाय सौज सेवहि सोहावनी ।
ललित लक्ष्मणा चारु चारुशीला सुपावनि ॥६३॥
ताते परम परत्व अपर समुझहि न यथारथ ।
पगे विपुल व्यौहार भार तजि प्रेम प्रदारथ ॥
सुघट सुवन सुचिरूप युगल मम जानु मानु मन ।
मधुरभाव मधि सखी चारुशीला विलास वन ॥११६॥
सियवर वैभव देश मध्य हनुमान नाम कपि ।
विदित भुवन सियराम उपासक प्रवल नाहिं छपि ।
युगल कृपा कमनीय लेस प्रिय पाय प्रेम रस ॥
रहस विवेक विचित्र लही मममति विहार वस ॥११७

यह लेख श्रीयुगलानन्यानुयायी लोग समझें
श्रीकरुणासिन्धु जी के अष्टयाम पूजा विधिमें पृ० २१-२२
श्री अग्रस्वामी जी का पद छपा हुआ है १८६८ ई० का

सुगन्धा छन्द

मंगल आरति करि सखि राम रिझाइकै ।
भूषण कछुक उतारहि प्रभु मन पाइकै ॥

कोइ सखि पट पहिरावहि दूसर छोरिकै।
अष्ट कमल दल मणि चौकी दुइ जोरिधै॥
द्वौ चौकी वसु वसु सखी टहल चतुरी बड़ी।
आठ कोण दल दल पर आयसु लखि खड़ी।
वागीशा माधवी प्रिया हरि मनजीवा।
नित्या विद्या सविद्या कूटरूपा सीवा।
आठौ मुख्य ढिगन द्वौ खड़ी सोरह सखी।
जस रघुवर सेवा महँ तस सिय के लखी॥
विमला उत्कर्षणी क्रिया योगा प्रवी।
ईशाना ज्ञाना सत्या सेवा कवी॥
आठ आठ जे मुख्य करहि मन की लखी।
समय समय सब लिहे अपर कोटिन सखी॥
परम मुख्य सखि पांच सुशीला लछिमना।
हेमा अतिशीला सुचारुशीला मना॥
पांचहु की आज्ञा सुसर्व सेवा सुची।
अर्घ देति सखि अग्र रामसिय की रुचि॥३७

रसमालिका में करुणासिन्धुजी लिखे हैं अवकाश ५ में

हनुमत शिव सुक सनक हमौ पाचों सखी।
रहहि सदा प्रभु निकट करहि आज्ञा लखी॥

अर्थात पूर्व पदके परम मुख्य सखी पांच का मिलान शेष जी वेदों से कहते हैं कि सुशीला सनक, लक्ष्मणा शेषजी, हेमा शुक, अतिशीला शिव, चारुशीला हनुमत्- ये पाचों सखी श्रीसीताराम सेवा में परम मुख्य हैं और- जैपुर गलतागद्दी के प्रथम महन्थ श्री कीलस्वामी जी के ५वां पढ़ी में श्रीमधुराचार्य महाराज का लेख है- माधुर्य केलिकादम्बनी नामक ग्रन्थ में-

सा श्रीप्रसादा जनकात्मजाया सखी च रामस्य च
चारुशीला।
चक्रेस्म वाल व्यजनं विनोदात् सरत्न दण्डं शुभगं
सुरम्यम् ।।१७५।।

श्री जनकात्मजाजी की मुख्य सखी श्रीप्रसादा श्रीरामजी की मुख्य सखी चारुशीला दोनों सरकारों को विनोद पूर्वक वाल व्यंजन कर रहे हैं।

श्रीजीवारामजी [श्रीयुगल प्रियाजी] रसिक प्रकाश भक्तमाल में श्री कृपानिवासजी के चरित्र में लिखते हैं-

हनुमत कृपा लहि परम गुरु श्रीप्रसाद अलि अग्र उन।
प्रिय काव्य सरस अनुरागमय कृपानिवास प्रसादगुन।३३।
पृष्ट ३५ व ३६ में

इस कवित्त की टीका में आपके चेला श्रीजानकी रसिक शरण जी लिखते हैं-

रही कछु बासना उपासना की दृढ़ता में,
करत हि ध्यान प्रगटे हैं हनुमान जू।
श्रीप्रसाद रूप निज अलख लखायो उर,
ताप को मिटायो जन ज़ानि कै नदान जू।
कनक भवन को स्वरूप दरसायो यथा,
मिथिला में ते सोई अवध परमान जू।
इष्ट के मिलायवे में हमही को गुरु मानो,
आलिन के यूथ चारुशीला हैं प्रधान जू।।१८८

इसी ग्रन्थमें और भी पृष्ट १३ में श्रीअनन्तानन्द जी के चरित्र में लिखे हैं-

जनक लली के कृपा रास रस पूरि रहे हैं- इसकी टीका में आपके चेला लिखते हैं।

रामानन्द स्वामी जी के शिष्य श्रीअनन्तानन्द,
शीतल सुचन्दन से भक्तन आनन्द कर।
सन्तन के मानद परानन्द मगन मन,
मानसी स्वरूप छवि सरसी वरालवर ।।
जनकलली की कृपापात्र चारुशीला अली,
रूप में अभिन्न भुजै रंग भूमि लीला पर।

उपर समाधि उर अमित अगाध नैन,
अँसुवाँ श्रवत उमगत मानो सुधासर ॥६५॥

जिनके प्रताप से विन्दी तिलक भारत भर में फैला है वे ही श्री दीनबन्धु रामप्रसाद जी महाराज लिखते हैं- अपने धर्म शिक्षा पत्री के पृष्ट २८-३४ में श्रीचिन्तामणी दासजी द्वारा प्रकाशित संवत् १९८७

हनुमत्संहिता चैव तथा श्री शिव संहिता ॥
अगस्त्य संहिता चैव ग्रन्था इष्टा विशेषत: ।९६॥
चारुशीला दयोभक्तास्तस्यस्यु पार्श्वत: क्वचित् ।
क्वचित्तदङ्केऽति श्नेहात्सतुज्ञेयस्तदैकल: ॥११७॥

श्रीसीताराम उपासना में मान्य ग्रन्थ विशेष करके श्रीहनुमतसंहिता शिवसंहिता अगस्त्य संहित ब्रह्म संहितादि है और श्रीसीताराम पार्षदों में श्री चारुशीलाजी अग्रमान्य है।

श्रीरामरतनदास (ज्ञान अली) जी रचित- सियावर केलि पदावली में लिखते हैं- पृष्ट २ में

उनइश सै बाइस विसद सम्बत जानि विशेष ।
गावत हौं सिय लाल यश श्रुति जेहि गावत शेष ॥१३॥
निमिकुल उद्भव भूप वर जनक नाम जगजान ।
तिनके भ्राता अष्ट हैं यह अगस्त्य परमान ॥२४॥

चन्द्रकान्ति मम मातु पितु शत्रुजीत नृप जान ॥
चारुशीला भगनी बड़ी ताको अनुचारि मान ॥२५॥
ज्ञा कहिये जो गोप्यरस ना निश्चय जिय जान।
ताकी शरणागत भई ज्ञाना अली बखान ॥२६॥
अष्ट सखी सिय मुख्य हैं तिन मह ज्ञाना जोय ।
ताकी सहचरि दुइ वपु ज्ञाना अलि सो होय ॥२७॥
अष्ट सखी आपने पृष्ट ६५ पद संख्या ३१५ में लिखा है

चलोरी चलोरी सजनी पिय संग खेलैं होरी ।
अबीर गुलाल रंग केशरि सजोरी गोरी ॥
नये २ रंग आज रसिक विहारी संग ।
सजिकै समाज उर उमंग न थोरी मोरी ॥
कालिह तो बचायो प्यारी पिय ने भिजाई सारी ।
आज तो नचाउ याको देखो जोरा जोरी सोरी ॥
हेमा हर्षानी चारुशीला जू की बानी मानी ।
शुभगा सयानी सारी सखिन समाज जोरी ॥
सुन्दरी सुलोचना सलोनी क्षेमा वरारोहा ।
पद्मसुगन्धा लिये अगर अबीर रोरी ॥
लक्ष्मणा ललित नाम सकल गुणन धाम ।
सुखमा अपार जाकी उपमा रमा सिकोरी ॥
जनक किशोरी संग सखिन मचायो रंग ।
पिय को रिझायो ज्ञाना अलि कटि पट छोरी ॥३१५

श्री सीतायन ग्रन्थ

श्री रामप्रिया शरण जी बिरचित प्रकाशन काल सन्
१८६७ ई० प्रिंटिग प्रेस लखनऊ में । पृष्ट २८ में

तृतिय मधुरता में कहव कन्या अष्ट प्रसग।
सकल सुता निमि वंश की रहति सदा सिय संग ।।१
चारुशीला अरु लक्ष्मणा हेमा क्षेमा जानु ।।
और वरारोहा पद्मगन्धा शुभगा मानु ।।२
पुनि सुलोचना अष्ट ये निमि कुल की अवतस।
नख शिख सुन्दरि मधुर सब सीता की महदंश ।।३
शत्रुजीत राजा निमिवंशी, जिनकँह वेद पुराण प्रशंशी।
चन्द्रकान्ति है तिनकी रानी, शोभा तेज शील गुणखानी।
तिन राजा रानी के गेहा, चारुशिला जन्मी तेहि गेहा।
माधव मास पूर्णमासी को, जन्मोत्सव भो सुख राशीको।
पुनि वरणों यशशाली राजा, राजत निमिकुल सहित समाज।
तिनकी रानी विदधा नामा, सकल सुभाव सुन्दरी श्यामा।
तिनके नेह प्रकाश ते लक्ष्मणा अवतार ।
जेष्ठ कृष्ण की अष्टमी मेषरू मंगलवार ।।१
पुनि अरिमर्दन ज्ञान निधि निमिकुल कमल दिनेश।
रानि सुभद्रा शील गुण पावन रूप विशेष ।।६

दम्पति प्रेम अनुरागते हेमा प्रगटी आय।
नौमि शुक्ल आषाढ़ को भइ उत्साह बजाय ।।७
अरितापन राजा सुघर सब विधि धर्म स्वरूप।
अति पुनीत तेहि सुब्रता रानी लसति अनूप।।११
तिनके प्रेम अनूपते क्षेमा जन्मी आय।
श्रावण शुक्ल अष्टमी सर्व दोष समनाय ।।१४
महिमंगल निमि वंश में अतिहि प्रसंशन योग।
धर्मपाल आचार युत करत अनेकन भोग।।१७
तिनकी रानी मोदनी गुणनिधि मंगल गेह।
पतिब्रतन में अग्र हैं राखति पति सों नेह।।१८
तिनके सुख रस भोग ते वरारोहा अवतार।
भाद्र कृष्ण नवमी सुतिथि मंगल निधि रविवार।।२०
बहुरि बलाकर को कहीं निमि के वंश उदोत।
सब धर्म में विमल मन अति तन छबि अरु ज्योत।२२
सौभागिनि तिनकी प्रिया मंगल मोद निधान।
राजनीति अरु धर्म सब जानत मन्दिर ज्ञान।।२४
दम्पति परम सनेहते पद्मगंधा प्रगटि भई।
तेहि दिन नभ अरु नगर में नाचति अमित नटी नई २५
आश्विन शुक्ल अरु सत्तमी पूर्व भाद्र गुरुवार।
मीन लग्न शुभ अयन में कुँवरि लीन्ह अवतार।।२६

वहुरि तेजशाली अमल करत सकल व्योहार ।।
निमिकुल कुमुद सुचन्द है धर्मपाल सुविचार ।।३०
तिनकी रानी गुन निधी विशालाक्षि जेहि नाम ।
निज छवि निदरति कोटिरति तिनको शुभ गुण ग्राम ।।
दम्पति प्रेम अपार ते श्री सुलोचना आय ।
जननी रूप अपार गुण सो सब कही न जाय ।।३२
कार्तिक नौमि शुक्ल दिन मंगल लख शुभ मूल ।
नखत रोहिणी सब विधि आई भइ अनुकूल ।।३३
बहुरि प्रतापन विमल मन निमि के वंश प्रवीन ।
अति उदार सब धर्म में रहत सदा लवलीन ।।३८
तिनकी रानी सुघर अति है विनीत तेहि नाम ।
पतिब्रता सब धर्म युत अद्भुत राजति वाम ।।४१
तिन दो उनके प्रेम ते शुभगा जनमो आय ।
अति उत्सव तेहि दिन भई सब छबि वर्णि न जाय ।।४२
मार्गशीर्ष शुक्ल नौमा तिथि सोमवार शुभखानि ।
पुष्य ऋक्ष बृष लग्न लखु मंगल मोद निधान ।।४३

इस प्रकार यह सात काण्ड वाले श्रीसीतायन ग्रन्थ में भी श्रीजानकीज़ी की आठ मुख्य सखियों का नाम जन्मकाल माता पिता का नाम तथा विवाहादि विधि श्रीरामप्रियाशरणजी नामक एक तीन सौ से

अधिक पुराने सन्त जी का लेख सन्तों में प्रसिद्ध है।
बड़े दुर्भाग्य है कि इस ग्रन्थ के केवल दोहो काण्ड
छपे मिलते हैं। ५ काण्ड हस्तलिखित ही है। सीतायन
का यह पूर्वोक्त लेख अष्ट सखी प्रसंग श्रीजनकपुर में
धनुष सरके तट रघुनाथ राम धर्मशाला के उपरी
खण्ड में पक्की स्याही से लिखा नैपाल सरकार द्वारा
सुरक्षित भी है। जो श्रीजानकी महल के महन्थ श्री
नवल किशोर दासजी के समय में लिखा गया था।

श्रीराम नव रत्न के ५ रत्न से पृष्ट ५७ ५८ में
टीकाकर्त्ता पं० श्रीरामबल्लभा शरणजी, जानकीघाट
सम्बत् १९८५ में प्रकाशित

सदाशिव संहितायां

श्रीराम मन्त्रस्यांशानि मन्त्राण्यन्यानि विद्धिच।
हनुमता चार्येणाहो रामधाम सतां पदम् ॥१८॥
श्रीजानक्याः पति सर्वे भजध्वं मंगलायनम्।
राम मन्त्रेणायुधाभ्यां युक्ताः शुशुभिरे भुवि ॥१९

अन्य सब मन्त्र श्रीराममन्त्र के अंश जानना।
श्रीरामधाम ही सज्जनों का प्राप्य स्थान है। यह
श्री आचार्य रूप श्रीहनुमानादि ने कहा है। श्रीजानकी

पति मंगल रूप हैं। उनको सब भजो पहले के लोग भी श्रीराम मन्त्र तथा श्रीरामायुध धनुषबाण से युक्त होकर पृथिवी में शोभित हुये हैं ॥१९॥

सुर गुर्वादि गुरवो राम मन्त्रस्य सेवकाः।
श्रीगुरो र्मारुतेः शिष्यो सुग्रीवश्च कपीश्वरः ॥२०॥
श्रीरामस्या युधौ तप्तौ राम मन्त्रं व्यधारयत्।
पद्माष्टादश संख्याता स्व सैन्याश्च हनुमतः ॥२१
दीक्षिता स्तेन मन्त्रेण धनुर्वाणेन चांकिताः।
हनुमच्छिष्यतां प्राप्तो महाराजो विभीषणः ॥२२॥
रामायुधाभ्यां तप्ताभ्या मंकितश्च स मुद्रया।
तथा तस्य प्रजाः सर्वा चिन्हिता राम लाञ्छनैः ॥२३
राजमार्ग मिमं विद्धि रामोक्तं जानकी कृतम्॥
यदृते चान्य मार्गास्तु चौराणां वीथिका यथा ॥२४

देव गुरु वृहस्पति आदि श्रीराम मन्त्र ही के सेवक है अर्थात् उपासक है। कपीश्वर श्रीसुग्रीवजी ने भी श्रीमारुतात्मज श्रीहनुमानजी को गुरु माना और तप्त श्रीरामायुध धनुष बाण तथा श्रीराममन्त्र को धारण किया ॥२०॥ अठारह पद्म यूथपों ने भी श्रीहनुमान जी से दीक्षित होकर श्रीरामजी के आयुध

तथा श्रीराम मन्त्र को धारण किया ।।२१।। महाराज श्रीविभीषण जी भी मुद्रा के सहित तप्त धनुषवाण से अङ्कित होकर श्रीहनुमान जी के शिष्यता को प्राप्त हुए श्रीराम मन्त्र लिया ।।२२।। उनकी सब प्रजाभी श्रीरामजी के चिन्हों से अङ्कित हुई ।।२३।। इसको राजमार्ग जानो क्योंकि यह श्रीरामजी का कहा हुआ है। श्रीजानकी जी ने इसका प्रचार किया। इसके विना अन्यमार्ग चोरों की गल्ली है।

आद्याचार्यं हनुमन्तं त्यक्त्वा ह्यन्य मुपासते।
क्लिश्यन्ति चैव ते मुग्धा मूलहा पल्लवाश्रिताः ।२५।
श्री मैथिल्याश्च मन्त्रं हि श्रीगुरुं मारुतं महत्।
सखी भावं दम्पतीष्ठं भुक्ति मुक्ति प्रदंसदा। २६।।
श्रीजानकी सम्प्रदायं राम रास मनन्यताम्।
ऋते केपि न यास्यन्ति बाञ्छित फल मेव च ।।२७।
श्रीरामस्या युधौ तप्तौ जानकी मुद्रिकां विना।
पारमेष्ठ्यं न प्राप्नोति ज्ञानादि साधनैरपि ।।२८।

सर्व प्रथम आचार्य श्रीहनुमान जी को छोड़कर जो अन्य उपासना करते हैं। वे मुग्ध मूल को छेदन कर पल्लवाश्रित हुए क्लेश पाते हैं ।।२५।। श्रीमैथिली

जी के सहित श्रीरामजी का मन्त्र श्रीहनुमानजी को महान गुरु तथा श्रीसीतारामजी की प्रिय सखी भाव, यह सदा भुक्ति मुक्ति देने वाला है ।।२६।। श्रीजानकी रूपा श्रीसम्प्रदाय श्रीरामजी की अनन्यता इसके विना कोई भी वाञ्छित फल को नही पा सकते हैं ।।२७।। तप्त श्रीरामायुध तथा श्री जानकी मुद्रिका के बिना ज्ञानादि साधनों से भी पारमेष्टद्य पद को नहीं पा सकते हैं ।।२८।।

रामा युधांकितश्चैव तनु त्यजति यः पुमान् ।
याम्याश्च पार्षदा स्तत्र नमन्ति शिरसाहितम् ।।२६।
युग्म मन्त्रं हि यो नित्यं धनुर्वाणौ च धारयेत् ।
स जानकी वल्लभस्य सामीप्यं सुख मृच्छति ।।३०
युग्म मन्त्र बिना नास्ति मन्त्रः कोपि सुख प्रदः ।
जानकी बल्लभो पास्ति विनोपास्ति नं बल्लभाः ।।३१
हनुमत्परमाचार्य्यं विनाऽऽचार्यो न कोपि च ।
इति पद्धति निर्णीतं पूर्वोक्तं च मयोदितम् ।।३२।।

अर्थ–श्रीरामजी के आयुधों से अङ्कित हुआ जो पुरुष शरीर को छोड़ता है उस समय यमराज के दूत उसको डर से शिर से प्रणाम करते हैं ।।२६।। जो श्रीयुगल मन्त्रराज व धनुष बाणों की छाप नित्य

धारण करता है वह श्रीजानकी बल्लभ जू के समीप्य तथा सुख को प्राप्त होता है ।।३०।। श्रीसीताराम जी के युगल मन्त्र के बिना कोई भी ऐसा सुख प्रद मन्त्र प्रिय नहीं है ।।३१।। पर्माचार्य श्रीहनुमानजी के बिना कोईभी उपासना ऐसा आचार्य भी समर्थ नही है। यह पूर्व का कहा हुआ सम्प्रदाय का निर्णय हमने कहा है ।।३२।।

श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर

पिता पुत्रत्व सम्वन्धो जगत्कारण वाचिना ।
रक्ष्य रक्षक भावश्चरेण रक्षक वाचिना ।।
शेष शेषित्व सम्बन्धश्च तुर्थ्या लुप्तयोच्यते ।
भार्याभर्तृत्व सम्बन्धोऽप्यनन्यार्हत्व वाचिना ।।
अकारेणापि विज्ञेयो मध्यस्थेन महामते ।
स्वस्वामि भाव सम्वन्धो मकारेणाथ कथ्यते ।।
आधारा धेय भावोऽपि ज्ञेयोराम पदेन तु ।
सेव्य सेवक भावस्तु चातुर्थ्या विनिगद्यते ।।
नमः पदेना खण्डेन त्वात्मात्मीयत्व मुच्यते ।
षष्ठयन्तेन मकारेण भोग्य भोक्तृत्व मप्युत ।।

पूज्य श्रीरामानन्दाचार्यजी ने श्रीराममन्त्रार्थ मैं आत्मा

का परमात्मा श्रीरामजी के साथ में जगत्कारण वाची रकार से १-पिता पुत्रत्व सम्बन्ध तथा २-रक्ष्य रक्षक ३-शेष-शेषी ४-भार्या-भर्तृत्व ५-स्व-स्वामी ६-आधार आधेय ७ सेव्य-सेवक ८-आत्मा-आत्मीय ९-भोग्य-भोक्तृत्व ये ९ सम्बन्ध केवल श्रीराममन्त्रार्थ से गिनाये हैं अब किस मन्त्र के नाते आगे अचार्यत्व श्रीहनुमान जी से या श्रीहनुमान परम्परा में सभी आचार्यों से भिन्न किसी को भी आचार्यत्व की कल्पना करना क्या उचित है ?।

श्रीसीतारामजी के मुख्य अष्ट पार्षद

जै मिथिलाधिप नन्दनी जै अवधेश किशोर।
जैति चारुशीला अली सकल सखिन शिरमोर ।।१
जै जै जै श्रीहनुमान श्री श्रीप्रसाद अवतार।
चारुशिला सर्वेश्वरी तीनरूप निजधार ।।२
जै श्री शुभगा भरत तन सेवा समय सुधार।
महाविष्णु अवतार महि सनक सुशीला चार ।।३
जै विमला अरु लक्ष्मणा लक्ष्मण रूपहु धार।
नारायण पुनि शेषतन सेवा समय विचार ।।४
जै हेमा श्री रिपुदवन तीन रूप सुखसार।
दम्पति सेवा सुरूख लखि भौमा सुक मुनि धार ।।५

सूर्य अंश सुग्रीव शिव शंकर्षण अवतार।
जै अतिशीला प्यारि पिय सुवरारोहा धार ॥६॥
जैति विभीषण भीषणा विश्वमोहिनी शक्ति।
पद्म सुगन्धा लाड़िली लाल पियावर भक्ति ॥७॥
भूशक्ती भूधरण की सुलोचना सिय प्यारि।
जैति जृम्मणा हरिप्रिया जाम्बवान तनुधारि ॥८॥
जयति क्षमावति क्षेमदा क्षेमा क्षमावतार।
अंगद विद्या वारिधर वागीशावर चार ॥९॥
वसु पारसद रसालहिय रसिकन आंख सुचार।
लखै लखावत लाख लख अक्ष आंख अधिकार ॥१०

इति

स्पष्टीकरण

श्रीसीताराम अष्ट मुख्य पार्षदों का श्रीसीताराम जी के दिव्य गुणों का रूप साक्षात् मूर्तिमान जिस प्रकार शास्त्रों में वर्णन है उसी प्रकार एक २ पार्षद के बहुत रूप धारण करने का भी वर्णन है जैसे कि श्री मद्वालमीकीय सुन्दरकाण्ड ३५ सर्ग में—

अहमेकस्तु संप्राप्तः सुग्रीव बचनादिह ॥७५॥
मयेयमसहायेन चरता कामरुपिणा।
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता त्वन्मार्ग विचयैषिणा ॥७६॥

अर्थात् श्रीहनुमानजी कहते हैं कि हे श्रीजानकी जी सुग्रीव जी के कहने पर एक में ही आपके पास पहुँचा हूँ, मैंने बिना किसी के सहायता के ही इस दक्षिण दिशा का अनुक्रमण करते हुये बहुत रूप धारण करके आपको खोजा है, मैं इच्छामय रूप धारण कर सकता हूँ।

इसी प्रकार बाल्मी० बालकाण्ड सर्ग १८ श्लोक १३ के अर्थ करते हुये श्रीशिरोमणि टीकाकार लिखते हैं कि–

वैकुण्ठे शस्तु भरतः क्षीराब्धीशश्च लक्ष्मणः।
शत्रुघ्नस्तु स्वयं भूमा रामसेवार्थं मागताः॥

इति नारद पञ्च रात्रवचनम्। अर्थात् वैकुण्ठेश भगवान विष्णु भरत हुए क्षीराब्धीश नारायण लक्ष्मण हुए भौमा नारायण शत्रुघ्न हुए। ये सब श्रीराम सेवा में पार्षद होकर प्रगट हुए हैं।

भगवत धाम में भगवान के पार्षद भगवान के समान हैं। छान्दोग्य ८–५–३ में– अथ यदनाशकायन मित्या च क्षते ब्रह्म चंमेव तदेष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथयदरण्यायन मित्याचक्षते

ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वैण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीय
स्यामितो दिवि तदैरं मदीयं सर स्तदश्वत्थः सोम सवन
स्तदपराजिता पू ब्रंह्मणः प्रभु विमितं हिरण्मयम् ॥३॥

अर्थ- यह भगवत धाम अपराजिता साकेतादि अयोध्या के नाम हैं। अविनाशी भगवान का कैंकर्य ही है। भगवत कैंकर्य द्वारा जिस स्वरूप को प्राप्त किया जाता है उसका नाश नहीं होता है। अर और ण्य नामक समुद्रों के तटस्थ कहे गये धामों में भगवान का कैंकर्य होता है। उस भगवत धामके दोनों तरफ अर व ण्य नामक दो समुद्र हैं। इस प्रकृति से परे त्रिपाद विभूती में दिव्य बहुत धाम हैं। वहां ऐरंमदीय नामक सरोवर हैं। वहां पीपल का पेड़ है जिसमें अमृत वरसता रहता है। जहां परमात्मा के संकल्प से ब्रह्म मण्डप बना हुआ है।

इस दिव्य धाम के पार्षदों का वर्णन-

तत् य एवैतावरं च ण्य चार्णवौ,
ब्रह्म लोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति।
तेषा मेवैष ब्रह्मलोक स्तेषां सर्वेषु,
लोकेषु कामचारो भवति ॥४॥

सिंहासन, वितान, छत्र, चवर, सब बन जाता है।
और भी-

दासः सखा वाहन मासनं,
ध्वजो यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः।
उपस्थितं तेन पुरागरुत्मना,
त्वदंघ्रि सम्मर्द्द किणांक शोभिना ॥४४

वेद स्वरूप गरुण आपके लिये दास सखा वाहन आसन, ध्वजा, वितान, व्यजन, सब कुछ बन कर आपके चरण मर्द्द की, अङ्क शोभिनी सब होते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी भी लिखते हैं। विनय पद २३१ और मोहि कोहै काहि कहि हों।

रंक राज ज्यों मनको मनोरथ कोई सुनाइ सुख लहिहौं
जम जातना जोनि संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं
मोको अगम सुगम तुमको प्रभु तउ फल चारि न चहिहौं
खेलिवे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो रामहौं रहिहौं
यहि नाते नरकहु सचु (पैहों) या विनु परम पदहुँ दुख दहिहौं
इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं
दीजै वचन की हृदै आनिये तुलसी कोपन निबहिहौं ॥२३१॥

और भी पद ७६ में-

तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन शरन पावै ।।७६।।

और भी मानस के अन्त में-

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम

हे प्रिय हे राम आप मोहि निरन्तर ऐसे लागहु जैसे दाम के पीछे लोभी नारी के पीछे कामी लगता है। अर्थात् मैं आपका दाम व नारी तो हूँ परन्तु आपके लोभी व कामी बनने की देरी हो रही है। इस दोहा का ऐसा अर्थ से अतिरिक्त अर्थ करने पर बिनय के पद सख्या २६१ में- मेरी न बनै वनाये मेरे कोटि कलप लों, राम रावेर बनाये वनै पल पाव में। इस अर्थ से विरोध पड़ेगा। अतः प्रेम मागने की चीज न होकर करने की ही होनी चाहिये। चातक की इसी में प्रसंशा है और भरत जी आदि ने भी यही किया है। मन्त्रराज का भी यही लक्ष है। पर हठोले प्राकृत का कोई उत्तर नही होता है। तुलसी भवानिह पूजि पुनि पुनि मुदित मन मन्दिर चली।

इस लेख का सही प्रत्यक्ष कोहवर घर से लगता है जहां-कौतुक बिनोद प्रमोद प्रेम न जाय कहि जानहि अली । अलियों का विषय अलीही समझ सकती है। दास द्वारा जानना या कहना धर्म दरबार का कलंक समझा जाता है। यह तुलसी की भाव गम्भीरता है।

वेद में श्रीसीताजी को धाम स्वरूप लिखा है

ऋग्वेद ९-६९-६ । साम० ९-३-१

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो-
मत्सरासः प्रसुपः साक मीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो
नेद्रा दृते पवते धाम किंचन ॥

यथा सूर्यस्य रश्मयः साकं युगपत द्रावयित्नवो गमनशीला आशवः शीघ्राश्च, एवं मत्सरासः-अहमिव सरंति ते मत्सरासः मज्जतियाः हरयो युगपत् सर्वत ईरते गच्छन्ति प्रसुपः प्रस्वपन्ति ते प्रसुपः स्थावरा लोका स्तान् प्रति ईरते। कीदृशाः ततं महांतं तन्तुम् प्रजावै तन्तुः इति श्रुतेः प्रजान् तद्धेतून् दारा नित्यर्थः। परि परिमार्गितु सर्गासः सृज्यंत इति सर्गा निसृष्टाः स्वामिने तिशेषः। तेषां मध्ये मयैव त्वं दृष्टासीति

वक्तुमशक्नु वन्नाह नेन्द्रादिति । इन्द्रा दृते इन्द्रानुग्रहं विना रामानुग्रहं बिना किंचन किमपि सत्वं धाम इन्द्रस्यैव गृहं सीता रूपं न पवतेन शोधनायावगच्छति । रामानुग्रहात्त्वा महं दृष्टवानस्मीत्यर्थः ।

नीलकण्ठ स्वामीजी ने इस मन्त्र का अर्थ मेरे समान शीघ्रगति वाले मेरे ही जाती के अनन्त बानरों को एक साथ सर्व दिशाओंमें भेजे हैं जो सर्वत्र पहाड़ादि में घूम रहे हैं। वे सब श्रीराम की परिवार मूला आप को खोजने के लिये भेजे गये हैं। परन्तु उन सबके मध्य केवल एक मैंने ही आपको देखा है। ऐसा श्री हनुमानजी कहना चाहते थे, पर सुशीलता से न कह सके परन्तु इतना ही कहे कि- श्रीरामजी की कृपा के विना श्रीराम धाम स्वरूपा सीता को कोई नहीं प्राप्त कर सकता है । अर्थात् मेरे ही ऊपर श्रीराम प्रसाद हुआ जो आपका दर्शन मुझको हो गया।

इस मन्त्र में श्रीसीताजी को श्रीराम धाम कहा गया है । अतः श्रीसीताजी एक रूप से धाम होकर एक रूप से धामाधिष्ठात्री देवी होकर श्रीराम वामांक में शोभित होती हैं। सो यह सीता रूप धाम का भी वेदों में विशाल वर्णन है कुछ लिखता हूँ।

अथर्व वेद १०-२-३१

मन्त्र-अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गों ज्योतिषा वृतः।३१।

अयोध्या पुरी आठ आवरण वाली है। तथा दिव्य पार्षद देवतों के समान प्रकाशमान ऐश्वर्य बाले सर्वशक्ति पूर्ण सब वाश करते हैं। उस अयोध्या के मध्य कर्णिका में अति प्रकाशमान ज्योति से घिरा श्रीकनक भवन है।

मन्त्र-तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरेत्रि प्रतिष्ठिते।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्म विदो विदुः

उस कनक भवन के भीतर मध्यमें अग्नि सूर्य चन्द्र सदृश-र, आ, म, मय महल रंग मदल है। जिसमें अतिमाधुर्यमय श्रीसीतारामजी, महा ऐश्वर्य स्वरूपा श्री चारुशीला जी द्वारा अनन्त सखी, अचिन्त्य ऐश्वर्य से सेवित हैं। त्रिप्रतिष्ठित का अर्थं मधूर्य में युगल मूर्तीं दोदलक वीज वत और तीसरा महाऐश्वर्य स्वरूपा सर्वेश्वरी चारुशीलाजू का समस्त सखीगण पूजन करती हैं। मनस्वी महात्मा वेद मर्मज्ञ ही उस महल में अपनी आत्माको प्रवेश करा सकता है जो भगवत कृपापात्र होगा ।।३३।।

मन्त्र-प्रभ्राज मानां हरणीं यशसासं परिवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशा पराजिताम् ।।३३।।

उस सुवर्णमयी महायश स्विनी सर्व पाप नाशिनी जो अपनी कीर्ति से स्वयं प्रकाशमान महाऐश्वर्य से घिरो हुई अमृत स्वरूपा अपराजिता अयोध्या नगरी में ब्रह्म (अणोरणीयान् महतो महीयान्) परमात्मा सीतारामजी अपने रमणत्व गुण में आवेशित रहते हैं। अर्थात् हमेशा महारास होते रहता है।

महारामायण सर्ग ५१ में लिखा है

यनि धामानि सर्वाणि श्रीरामस्याद्भुतानि च ।
गुणाश्चानन्त रूपाणि प्रेरिकेषां विलम्बिनी ।।११।।

श्रीराम जी के अद्भुत सम्पूर्ण जितने भी धाम हैं और अनन्त रूप तथा गुण हैं। इन सब की प्रेरिका विलम्बिनी नाम की शक्ति है ।।११।। महारामायण में भी श्रीसीताजी की काम करने वाली बहुत सी सखियों का नाम लिखा है। यथा—

सं प्रवक्ष्यामि जानक्याः त्रयः त्रिसत्शक्तयः ।
निकटे संस्थिता नित्यं सर्वाभरण भूषिताः ।।१।।

श्रीशंकर जी पार्वती को कहते हैं कि मैं तुमको श्रीजानकीजी की निम्य साथ रहने वाली सर्वालंकारों से अलंकृत ३३ शक्तियों का वर्णन करके सुनाता हूँ।

श्री भूं लींला तथोत्कृष्टा कृपायोगोन्नती तथा।
ज्ञाना पर्वी तथा सत्या कथिता चाप्य नुग्रहा ॥२॥
ईशानाश्चैव कीर्तिश्च विद्येला क्रान्ती लम्बिनी।
चन्द्रिकापि तथा क्रान्ता वैभीषणी तथा ॥३॥
छान्ता च नन्दिनी सोका शान्ता च विमला तथा।
सुभदा शोभना पुण्या कला चाप्यथ मालिनी ॥४॥
महोदया ह्लादिनी च शक्ति रेकादश त्रिका।
पश्यन्ति भृकुटीं तस्या जानक्या नित्यमेव च ॥५॥

श्री भू, लीला, उत्कृष्टा, कृपा, योगा, उन्नती, ज्ञाना, पर्वी, सत्या, अनुग्रहा ईशाना, कीर्ती, विद्या, इला, क्रान्तो, लम्बिनी, चन्द्रिका, क्रूरा, कान्ता, भीषणी छान्ता, नन्दिनी, शोका, शान्ता, विमला, सुभदा, शोभना, पूण्या, कला, मालिनी, महोदया, अहलादिनी ये ३३ सखी श्रीसीताजी के रुची पर काम करती हैं।

महाभारत शान्ति पर्व राजधर्मानुशासन पर्व अ० ४७

भीष्म ने कृष्णस्तुति में कहा है—

अकुण्ठं सर्वं कार्येषु धर्मं कार्यार्थमुद्यतम् ।
वैकुण्ठस्य च तद्रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः ।।६४।।

जिन्हें कोई भी काम करने में रुकावट नहीं होती जो धर्म का काम करने को सर्वदा उद्यत रहते हैं तथा जो वैकुण्ठ धाम के स्वरूप हैं । उन कार्य रूप भगवान कृष्णजी को नमस्कार है ।।६४।।

यहां पर कृष्ण धाम स्वरूप कहे गये हैं ।

अ० २०६ में नारदस्तुति में

योगावास नस्तुभ्यं सर्वावास वरप्रद ।
यज्ञगर्भ हिरण्याङ्ग पञ्चयज्ञ नमोऽस्तुते ।।६२।।

योग के आवास स्थान आपको नमस्कार है । सबके निवास स्थान, वरदायक, यज्ञगर्भ, सुनहरे रंगों वाले पञ्चयज्ञमय परमेश्वर आपको नमस्कार है ।

चतुर्मूर्ते परंधाम लक्ष्म्यावास परार्चित ।
सर्वावास नमस्तेऽस्तु वासुदेव प्रधान कृत ।।६३।।

आप श्रीकृष्ण बलभद्र प्रद्युम्न अनिरुद्ध इन चार रूपों वाले, परमधाम स्वरूप, लक्ष्मी निवास, परम पूजित सबके आवास स्थान और प्रकृति के भी प्रवर्तक हैं । हे वासुदेव आपको नमस्कार है । इस प्रकार चतुर्व्यूह सबधर्म स्वरूप कहे गये हैं ।

केनो० खं० ४ मं० ६

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स ·य एतदेवं वेदाभि है नं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥६॥

वह यह ब्रह्म ही वन है जो सच्चिदानन्द दिव्य धाम में प्रमोद नाम का बन हैं। जिसमें परमात्मा का नित्य बिहार पार्षदों का सम्भजनीय स्थान है।

कठोपनिषद १-२-१५ में जो दिव्यधाम का वर्णन है- यही बात गीता ८-११ में भी कहा है:-

सर्वे वेदा यत्पद मामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्यो-
मित्येतत् ॥

सम्पूर्ण वेद जिस दिव्य धाम का वर्णन करते हैं। जिस दिव्य धाम की चाहना से सभी तपस्यायें कही जाती है। जिस धामकी चाहना से मुमुक्षु जन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उस दिव्य धाम को मैं तुम्हें बताता हूँ ऐसा यमराज ने नचिकेता को कहा है। यही बात गीता अ० ८ के श्लोक ११ व २१ में भी कहा गया है।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्त स्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

अव्यक्त अक्षर इस प्रकार जिसको कहा जाता है वही परम गति सब आत्माओं की है जिसको प्राप्त कर फिर जीवात्मा संसार में लौटकर नहीं आता है वही मेरा परम धाम स्वरूप है ।।२१।।

वह दिव्य धाम प्रकृति मण्डल से परे हैं गीता अ० १५–६

नतद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा ननिवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।६।।

जहां सूर्य, चन्द, अग्नि का उज्याला नही पहुँचता जहां जाने पर आत्मा लौटकर जन्म मरण संसार में नहीं आता वह मेरा परम धाम स्वरूप है ।।६।।

वह धाम स्वरूप मैं ही हूँ। गीता १४–२७ में ब्रह्मकी प्रतिष्ठा मैं हूँ लिखा है। ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाहं।

श्वेताश्वतरोपनिषद अ० ४ मं० ३
अथर्ववेद का० १० सू ८ मं० २७

त्वं स्त्री त्वं पुमा नसि त्वं कुमार उतवा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चयसि त्वं जातो भवसि
विश्वतोमुखः ।।

हे परमात्मा तू ही स्त्री, तू ही पुरुष है, तू ही कुमार, तू ही कुमारी है, तू ही जीर्णता रूप दण्ड से प्राण बियोग फिर तू ही जन्मता हुआ विश्व का प्रधान है।

वृहदारण्य० १-४-३

स वै नैव रेमे तस्मा देकाकी न रमते स द्वितीय मैच्छत्।
स है ताबा नाश यथा स्त्री पुमां सौ सं परिष्वक्तौ॥

वह अकेले नहीं रमा इसलिए अकेले रमण नहीं होता है, उसने दूसरे की चाहना की तो तब वह स्त्री पुरुष रूप होकर परस्पर आलिग्न करने लगा।

छान्दोग्य अ० ६ खं० २ मं० ३ में लिखा है।

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत्।

तत् पद वाच्य प्रेरक परमात्मा ने इच्छा किया कि मैं बहुत हो जाऊँ तो उसकी इच्छा विपरीत थी अर्थात् वह स्वयं तो सत चित आनन्द स्वरूप था उसका धर्म गुण भी सच्चिदानन्द था परन्तु उसने अन्धकार अज्ञान दुःख की चाहना किया तो उस प्रेरक की चाहना के अनुसार उसकी शक्ति ने एक रूप से उस चाहना में प्रवेश किया तो तब वह प्रेरक का तेज उस प्रेरक से अलग होकर अब वह तेज भी इच्छा करने लगा यथा—

तत्तेजोऐरक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत।

महा भा० शान्ति पर्व अ ३४२

श्रीनारायण ने कहा

धाम सारो हि भूताना मृतं चैब विचारितम्।
ऋत धामात तो विप्रैः सद्यश्चाहं प्रकीर्तितः ।।६६।।

प्राणियों के सारतत्व का नाम है धाम। ऋत का अर्थ है सत्य ऐसा विद्वानों ने विचार किया है। इसी लिये ब्राह्मणों ने तत्काल मेरा नाम ऋतधामा रख दिया ।।६६।। और भी- सर्वलोक तमो हन्ता आदित्यो द्वार मुच्यते। अन्धकार नाशक सूर्य भी वैकुण्ठ का फाटक कहे जाते हैं।

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा। इस वाल्मीकीय शब्दानुसार श्रीसीताजी का उस पर ब्रह्म श्रीरामजी के लिये धाम भी स्वरूप होना लक्ष होता है। क्योंकि श्रीराम मन्त्रराज का महात्म श्री शंकरजी जानते हैं। ये श्रीराम छब्बीसवाँ तत्व हैं। पचीसवां तत्व श्रीरामजी का धाम है। यथा-बृ० ब्र० सं० पाद १ अ० ७ में लिखा है-

षड्विंशको हरिः साक्षात् परमात्मा परायणः।
कल्याणादि गुणोपेतो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।।५२।।

और भी वही पर अ० ३ में

निरञ्जनो निरालम्बोनिर्विकारो निरामयः।
वांमनोगोचरैश्वर्यो नित्यमुक्त जनाश्रयः ॥५३॥
आविस्कृत महालीलः कोटि ब्रह्माण्ड नायकः।
शुद्धसत्व तनुः श्रीमाञ्श्रीभू लीला पतिः प्रभुः ॥५४
दिव्यायुधो दिव्य जनो दिव्य लोक कृतालयः।
दिव्य वाहन भूषाढयो दिव्य भोग महत्प्रभुः ॥५५
यस्य लोक गुणांशानां विभूतीना मनेकशः।
प्राकृतेऽप्यनुभूयन्ते जनानां मुक्ति हेतवे ॥५६॥

श्रीवत्स ब्राह्मणने २५वां आत्मा साक्षात् करने पर भी जब २६वां परामात्माको न देखा तो तब नरनारायण को गुरु बनाये तब गुरू जी ने उपदेश में उस २६वां तत्व परमात्मा को शरणागत वत्सल, स्वतन्त्र ईश्वर, दिव्य, गुण, आयुध, पार्षद धाम, वाले दिव्य, बाहन, भूषण, भोग, महाप्रभू दिव्य विभूती मन वाणी परे स्वतन्त्र लीला, कोटिब्रह्माण्डनायक प्रकृति से परे दिव्य कल्याण गुणाकर ईश्वर को बताया।

नैव प्रापं परं स्वस्मात् षड्विंशं पुरुषं नृप।
यद्वाधार मिदं सर्बं सदसच्छब्द शब्दितम् ॥४०

बृ० ब्र० सं० पाद १ अ० १३

नमुक्तो नापिनित्यस्तु जीवादन्यः परः पुमान् ।
द्विहस्तं ह्येक वक्त्र च शुद्धं स्फटिक संनिभम् ॥९६
सहस्र कोटि वह्नीन्दु लक्ष कोटयर्क संनिभम् ।
पीताम्बर धरं सौम्य रूप माद्य मिदं हरेः ॥९७॥

वह २६ वां तत्व परमात्मा नित्य मुक्त जीव संज्ञासे परे दो भुजा एक मुख दो चरण वाले पीताम्बर धारी सुन्दर सुकुमार करोणों सूर्यचन्द्र अग्निसे अधिक प्रकाशमान शुद्ध सतचित आनन्द ब्रह्म हैं। यह रूप सभी भगवत रूपों में परात्पर आदि रूप है। ९६ ९७

वासुदेवेति विख्यातं ततोन्यत्समपद्यत ।
वासुदेवाभिधः सोऽपि ह्येक वक्त्रश्चतु र्भुजः ॥१००।

पूर्वोक्त दो भुज परमात्मा के अतिरिक्त दूसरे वासुदेव भगवान हैं। जो चार भुजा एक मुख वाले हैं।

केनापि हेतुनैवाभूद् द्वितीयश्च चतुर्मुखः ।
नारायणो वासुदेव स्तृतीयोऽयं द्विधाभवेत् ॥११४॥

ये ही पूर्वोक्त वासुदेव किसी कारण से दूसरा रूप ब्रह्मा तथा नारायण व वासुदेव तीन रूप से और हो गये ॥१०४॥

प्रद्युम्न संकर्षणाक वासुदेवा इति त्रयः।
त्रिपाद्विभूति राख्याता अमृता मुक्ति सेतवः ।।१४६

प्रद्युम्न संकर्षण वासुदेवं ये तीन त्रिपादि विभूती कहे जाते हैं। ये तीनों अमृत हैं। मोक्ष द्वार हैं।१४६

पादतश्चानिरुद्धस्य समभूवन् सहस्रशः।

अनिरुद्ध एक पाद विभूती स्वरूप करोणों ब्रह्माण्ड हो गये।

भारत शान्ति पर्व अ० ३०८ में २६वां तत्व

अव्यक्त बोधनाच्चापि बुध्यमानं बदन्त्युत ।
पच्चर्विशं महात्मानं न चासावपि बुध्यते ।।६।।

पञ्चीशवां तत्व रूप महान आत्मा अव्यक्त प्रकृति को जानता है। इसलिये उसे बुध्यमान कहते हैं। परन्तु वह भी छब्बीसवां तत्व को नहीं जानता है।६

षड्ङ्विशं विमलं बुध्यमप्रमेयं सनातनम् ।
सतु तं पञ्च विशं च चतुर्विशं च बुध्यते ।।७।।

छब्बीसवां तत्व अप्रमेय सनातन बुद्ध स्वरूप अर्थात सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान व्यापक परात्पर ब्रह्म पच्चीसवाँ तत्व चौबीसवां प्रकृति सबको जानता है।७।

उस छब्बीसवां तत्व को तत् शब्द से

"तनोति विस्तारयति बा प्रेरयति" इस तरह प्रेरक कहा गया हैं। गीता अ० १७ के

ॐ तत् सत् इति निर्देशः ब्रह्मणः त्रिविधः स्मृतः।
ब्रह्मणा तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।।२३।।

सत् २५वां तत्व प्रेर्य है तत् २६वां तत्व प्रेरक है। ॐ शब्द ब्रह्म से प्रेरणा होती है। परा बांणी प्रेरक की हैं, व पश्यन्ती बांणी सत् विभूतियों का देवत्व हैं। मध्यमा वांणी जीवों का विचार है। बैखरी वाँणी प्रकृति का विषयत्व है, यह सब ॐ से होता है। इसीसे ब्रह्मा के द्वारा उस प्रेरक ने वेद प्रगट करके यज्ञों द्वारा जीवों को परमात्मा के साथ योजित करने के लिये विधान बनाया है अतः ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय। प्रमाता, प्रमा प्रमेय भेद बना रहता है। अन्यथा ज्ञान अज्ञान का सवाल ही नहीं उठता है।

बृ० ब्र० सं० पाद २ अ० ७

वासुदेवादि मूर्तीनां चतुर्णां कारणम् परं।
चतुर्विंशति मूर्तीनां श्रीरामः शरणं मम ।।२६।।

वासुदेवादि चारपाद विभूतियों के प्रेरक तथा चौबीस अवतारों के कारण श्रीरामजी मेरे उपाय है। ऐसा नारायण ने लक्ष्मीजी से कहा है। यहां श्रीनारायण भगवान ने इन पूर्वोक्त प्रकार से ३५ श्लोकों में

श्री लक्ष्मीजी को श्रीरामशरणागति मन्त्र बताए और श्रीराममन्त्र का उपदेश दिया। यह है श्रीराम तत्व

महाभारत शान्ति पर्व अ० २१९

गुरु शिष्य सम्वाद रूप में शिष्य का प्रश्न है कि मैं इस संसार में कहां से आया हूँ। आप कहां से आये हैं। और यह सम्पूर्ण जगत जब परमात्मा से हुआ है तो तब यह अविनासी का जन्माथा क्षय और बृद्धि दोनों विपरीत भाव क्यों पैता भये। गुरु का उत्तर है कि-

वासुदेवः परमिदं विश्वस्य ब्रह्मणों मुखम्।
सत्यं ज्ञान मथो यज्ञ स्तितिक्षादम आर्जवम् ॥६॥

सम्पूर्ण वेद का मुख जो प्रणव है वह तथा सत्य, ज्ञान, यज्ञ, तितिक्षा, इन्द्रि संयम्, सरलता और परम तत्व यह सब कुछ वासुदेव ही है।

अर्हस्त्वमसि कल्याण वार्ष्णेयं श्रणु यत्परम्।
कालचक्र मनाद्यन्त भावाभाव स्वलक्षणं ॥१३॥
त्रैलोक्यं सर्वभूतेशे चक्र वत्परिवर्तते।

तुम यह सब सुनने के अधिकारी हो अतः भगवान कृष्णके जो कल्याणमय उत्कृष्ट महात्म्य है उसे सुनो!

यह जो सृष्टि प्रलय रूप अनादि अनन्त काल चक्र है, वह श्रीकृष्ण में ये तीनों लोक चक्र की भांति घूम रहे हैं। गीता अ० ११ के ३२ में भी- कालोऽस्मि लोकक्षय कृत, कह श्रीकृष्ण भगवान ने अपने को कालरूप कहा है। श्रीकृष्ण भगवान परात्पर का ध्यान करते हैं। महाभारत शान्ति पर्व अ० ५३ में लिखा है-

ततः शयन माविश्य प्रसुप्तो मधुसूदनः।
याममात्रार्ध शेषायां यामिन्यां प्रत्य बुद्धचत ।।१।।

वैशम्पायनजी बोले कि- उसके बाद मधुसूदन भगवान कृष्णजी एक सुन्दर शय्या में सो गये। फिर प्रातः आधा पहर रात्रि बाकी थी तो उठकर बैठ गये।

स ध्यान पथमाविश्य सर्व ज्ञानानि माधवः।
अवलोक्य ततः पश्चात् दध्यौ ब्रह्म सनातनम् ।।२

तत्पश्चात् ध्यान मार्ग में स्थित होकर माधव सम्पूर्ण ज्ञानों को प्रत्यक्ष करके अपने सनातन ब्रह्म स्वरूप का ध्यान करने लगे ।।२।।

महाभारत शान्ति पर्व अ० ३३९ में वासुदेव नारदजी से बोले-

मां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ताभक्तास्तु ये मम ।
अहं हि पुरुषो ज्ञेयो निष्क्रियः पञ्चविंशकः ॥४३

यहां जो मेरे भक्त हैं वे मुझ में ही प्रवेश करके मुक्त होते हैं । मैं ही पच्चीसवां तत्व हूँ निष्क्रिय पुरुष जानने योग्य हूँ । अर्थात् पच्चीसवां तत्व छब्बीसवां तत्त्व से प्रेरित यदि अपने को मानता है तो तब निष्क्रियता पच्चीसवाँ तत्व को प्राप्त होती है। छब्बीसवां तत्व प्रेरक परमात्मा है । जैसा कि महा भारत शान्ति पर्व अ० ३०८ में

अव्यक्त बोधनाच्चापि बुध्यमान वदन्त्युत ।
पञ्चविंशं महात्मानं न चासावपि बुध्यते ॥६॥
षड् विंशं विमलं बुद्ध मप्रमेयं सनातनम् ॥
स तु तं पञ्चविंशं च चतुर्विंशं च बुध्यते ॥७॥

पच्चीशवां तत्व रूप महान आत्मा अव्यक्त प्रकृति को जानता है । इसलिये उसे बुध्यमान कहते हैं, परन्तु वह भी छब्बीसवां तत्व रूप निर्मल नित्य शुद्ध बुद्ध अप्रमेय सनातन परमात्मा को नही जानता है, किन्तु वह सनातन परमात्मा उस पच्चीसवें तत्व को तथा चौबीसवीं प्रकृति को भी भलीभांति जानता है । ६-७

निः सङ्गात्मान मासाद्य षड्विंशकमजं विभुम् ।
विभुस्त्य जति चाव्यक्तं यदा त्वेतद् विबुद्धयते ।२०
चतुर्विंशमसारं च षड्विंशस्य प्रबोधनात् ॥

छब्बीसवां तत्व परमात्मा अजन्मा सर्वव्यापी और संग दोष से रहित है। उसकी शरण लेकर जब जीवात्मा उसकी कृपासे उसके स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है तो तब परमात्म ज्ञान के प्रभाव से स्वयं भो सर्वव्यापी हो जाता है । तथा चौवीस तत्वों से युक्त प्रकृति को असार समझकर त्याग देता है ।२०।

इस प्रकार से यह २४ तत्वों की प्रकृति तथा २५वां तत्त्व वासुदेव से लेकर चारपाद विभूती तथा जीवात्मा को कहा गया है और प्रेरक परमात्मा छब्बीसवां तत्त्व को कहा गया है। इसी बात को लक्ष करके श्रीगीताजी में भी अ० १५ के श्लोक १७ में तथा अ० ८ के श्लोक ६ में तथा अ० १८ के श्लोक ६१ में उस प्रेरक परमात्मा का लक्ष करके तब कहा गया है कि– तमेव शरणं गच्छ ।।६२।। शरणागति गुरु द्वारा होती है। अतः मैं जहां एक हूँ उनकी शरण मेरे द्वारा जावो, मैं तुम्हारे सब पाप मिटा दूँगा ।।६६।।

महाभारत शान्ति पर्व अ० ३३६ वें अध्याय में
चारपादविभूती का होनालिखा है ।

ततो भूयो जगत्सर्वं करिष्यामीह विद्यया ।
अस्मिन्मूर्तिश्चतुर्थीया सासृजच्छेष मव्ययम् ।।७२।।

जगत्सृष्टि के समय विद्या शक्ति द्वारा सबसे प्रथम चतुर्व्यूह मूर्तियों में वासुदेव प्रथम होकर तत्र वासुदेव से अव्ययमूर्ती शेष की उत्पत्ति हुई ।

सहि शंकर्षणः प्रोक्तः प्रद्युम्नं सोऽप्यजीजनत् ।
प्रद्युम्ना दनिरुद्धोऽहं सर्गोमम पुनः पुनः ।७३।।

वही शेष को शंकर्षण कहा गया है । शंकर्षण ने प्रद्युम्न को प्रगट किया प्रद्युम्न से अनिरुद्ध रूप में मैं स्वयं प्रगट हुआ हूँ । इस प्रकार मेरे से ही सम्पूर्ण चराचर जगत बार–२ उत्पन्न हुआ करता है ।।७४।।

अनिरुद्धा त्तथा ब्रह्मा तन्नाभि कमलोद्भवः ।
ब्रह्मणः सर्वभूतानि चराणि स्थावाराणि च ।।७४

अनिरुद्ध मूर्ती के नाभि कमल द्वारा प्रगटे ब्रह्मा से उत्पन्न हुये जो चराचर मूर्ती हैं वे ही जगत् के मूल कारण हैं !

यो वासुदेवो भगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः ।

ज्ञेयः स एव राजेन्द्र जीवः संकर्षणः प्रभुः ॥४०॥
संकर्षणाच्चप्रद्युम्नो मनोभूतः स उच्यते ।
प्रद्युम्नाद्योऽनिरुद्धस्तु सोऽहंकारः स ईश्वरः ।४१।

भीष्मजी कहते हैं हे युद्धिष्ठिर-जो भगवान वासुदेव क्षेत्रज्ञ स्वरूप एवं निर्गुण रूप से जानने योग्य बताये गये हैं। वे ही प्रभावशाली सङ्कर्षण रूप जीवात्मा है। सङ्कर्षण से प्रद्युम्न का प्रादुर्भाव हुआ है जो मनोमय कहलाते हैं। प्रद्युम्न से जो अनिरुद्ध प्रगट हुये हैं, वे ही अहंकार और ईश्वर हैं ॥४०-४१॥

मत्तः सर्वं सम्भवति जगत् स्थावर जंगमम् ।
अक्षरं च क्षरं चैव सच्चा सच्चैव नारद ॥४२॥

श्रीवासुदेव भगवान श्री नारद जी से कहते हैं। हे नारद मुझ से ही समस्त स्थावर जंगम रूप जगत की उत्पत्ती होती है। क्षर और अक्षर तथा असत् और सत् भी मुझसे ही प्रगट हुये हैं।

महाभारत शान्ति पर्व अ० २१० में

परात्पर को नारायण जानते हैं लिखा है।

अनाद्य तत्परं ब्रह्म न देवा नार्षयोविदुः ।
एकस्तद् वेद भगवान् धाता नारायणः प्रभुः ।२३।

वह परात्पर ब्रह्म अनादि और सबसे बड़े हैं। उसको न देवता जानते हैं न ऋषी ही जानते हैं। उसको तो एकमात्र जगत पालक व धारक नारायण ही मात्र जानते हैं ।।२३।।

नारायणाद् ऋषि गणास्तथा मुख्याः सुरासुराः ।
राजकीयः पुराणाश्च परमं दुःखभेषजम् ।।२४।।

नारायण से ही ऋषियों व मुख्य -२ देवता असुर तथा प्राचीन राजर्षियों ने उस ब्रह्म को जाना है। वह ब्रह्म का ज्ञान ही समस्त दुःखों का परम औषध है ।।२४।।

पुरुषाधिष्ठितान् भाबान् प्रकृतिः सूयते यदा ।
हेतु युक्त मतः पूर्वं जगत्सम्परिवर्तते ।।२५।।

पुरुष द्वारा संकल्प में लाये गये विविध पदार्थों की रचना प्रकृति ही करती हैं ।।२५।।

इस प्रकृति से सर्व प्रथम कारण सहित जगत उत्पन्न होता है। इसी क्रम से सब सृष्टी दीप से दीप की तरह से विस्तार हुई है।

बृहद्ब्रह्म संहिता पाद ४ अ० ६

अकार त्रय सयुक्ता न्नवेज्या कर्म तत्परान् ।
अर्थपञ्चक तत्त्वज्ञान्महाभागवतान्नमेत् ।।११७।।

बृ० ब्र० सं० पा० १ अ० ७

अकार त्रय सम्पन्नाः परमैकान्तिनो मताः ।
धन्याः सुदुर्लभाः लोके नित्यं तेभ्यो नमो नमः ।८५
वृ० ब्र० सं० अ० १३

श्रिया भूम्या लीलया च नित्य मुक्तै रूपासितम् ।
प्राप्यं भोग्यं रक्षकञ्च यदेकं श्रुति वोधितम् ।२०६
पाद ३ अ० ६

शास्त्रं विजानताम्मध्ये कश्चिदेव नराधिप ।
प्रपन्नो जायते लोक आकार त्रय संयुतः ।।११३।।

अकारत्रय के स्वरूप को समझ कर स्वरूप में विलीन रहना तथा अष्टयाम भाव से सेवा कार्य में सावधान रहना अर्थपञ्चक तत्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना यही महाभागवत वैष्णव कहे जाते हैं। इन्हीं जिनको नित्य प्रणाम किया जावे परम एकान्त भाव वाले अकारत्रय सम्पन्न ऐसे धन्य महात्मा लोक में अत्यन्त दुर्लभ हैं। श्री भूमि लीलाऽदि सखियों सहित श्री युगल सरकार को हृदय में धारण कर अनन्य शेषी भोक्ता रक्षक श्रुति प्रतिपाद्यका ज्ञान प्राप्त करना शास्त्रज्ञों में भी कोई विरला ही मर्मज्ञ होता है। ऐसा श्री शंकरजी ने भद्राश्व राजा को कहा।

ऐसा ही महाभारत के शान्ति पर्व में श्री जनक जी को सुलभा नाम्नी सन्यासिनि ने उपदेश दिया है। यथा—

मोक्षेहि त्रिविधानिष्ठा दृष्टान्यै र्मोक्षवित्तमैः।
ज्ञानं लोकोत्तरं यच्च सर्वत्यागश्च कर्मणाम् ॥३८

महाभा० शा० मो० अ० ३२० श्लोक ३८-४७

काषाय धारणं मौण्ड्यं त्रिविष्टब्धं कमण्डलुम्।
लिंगान्युत्पथ भूताधि न मोक्षायेति मे मतिः ॥४७॥

मोक्ष के मर्मज्ञों ने मोक्ष मार्ग में तीन प्रकार की निष्ठा को देखा है। क्योंकि उन मोक्ष मर्मज्ञों का ज्ञान अलौकिक है जिसमें कर्मो का सर्वथा त्याग या ग्रहण का अवसर ही नहीं है ॥३८॥ इस प्रकार के ज्ञान के बिना मूड़ मुड़ाना काषाय बस्त्र धारण करना त्रिदण्ड व कमण्डल को धारण करना मोक्ष के लिये न होकर केवल चिन्ह धारण करना मात्र है ॥४७॥

कठोप० १-२-७ आश्चर्यो वक्ता० आश्चर्यो ज्ञाता०

इस भगवत तत्व का बक्ता और श्रोता गुरु चेला आश्चर्यमय ही हैं। अर्थात् कोई कृपापात्र ही गुरु और कोई कृपापात्र ही चेला भी हो सकता है। यही

आश्चर्य है। इस प्रकार के भगवत कृपापात्र गुरु चेला भगवत धाम में जाकर परमात्मा के साथ आनन्दित होते हैं ऐसा छान्दोग्य० अ० ८ खं० १२ मन्त्र ३ में-

एव मेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योति रूप सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तम पुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत्क्रीडन् रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा। नोप जनंस्मरन्निदं शरीरं स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एव मेवाय मस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ॥३॥

उसी पूर्वोक्त प्रकार से यह श्री गुरु कृपा प्रसाद इस शरीर से आत्मा को समुत्थान कराकर परम ज्योति को प्राप्त हो अपने सहज स्वरूप में स्थित हो जाता है। इस प्रकार से प्राप्य वे परमात्मा उत्तम पुरुष हैं। जिनके साथ यह आत्मा अत्यन्त समीप में प्राप्त होकर उन परमा के साथ हँसता है खेलता है स्त्री पुरुष रूप में अथवा सवार सवारी रूप में आदि अनेक प्रकार से आत्मा परमात्मा साजात्य मिलकर रमण करते हैं। उस अवस्था में यह आत्मा इस प्राकृत शरीर व शरीर सम्बन्धी किसी को भी याद नही करता है। क्योंकि यह शरीर धारी सब जीव

गाड़ी में जुते बैल या घोड़ों की तरह प्राणों द्वारा शरीर बन्धन में पड़े हुये हैं ॥३॥

ऐसी श्री वैष्णवता– हारित स्मृत्ति में लिखा है

अर्थं पञ्चक तत्वज्ञाः पञ्चसंस्कार संस्कृताः ।
अकार त्रय सम्पन्नाः महाभागवता स्मृताः ॥

अर्थं पञ्चक अर्थात् प्राप्य, प्रापक, प्राप्ती, उपाय विरोधी का ज्ञान प्राप्त होना। पञ्च संस्कार गुरु द्वारा प्राप्त करना। अकार त्रय भजनसे प्राप्त करना। यह महाभागवत का चिन्ह है।

कठ० अ० १ व० १ अकारत्रय–

त्रिणाचिकेत स्त्रय मेत द्विदित्वा,
य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् ।
समृत्यु पाशान्पुरतः प्रणोद्य,
शोकातिगो मोदते स्वर्ग लोके ॥१८

अकारत्रय का विद्वान् तीनों आकार (अनन्य-शेषत्व, अनन्यभोग्यत्व अनन्यरक्षकत्व) को जानकर नचिकेता की तरह रहन को अपनाता है तो वह जीवन मुक्त होकर शोक को तर कर [पार कर] दिव्यधाम में आनन्दित होता है ॥१८॥

इस तरह अकारत्रय सम्पन्न को अनुभव में सन्दीपनी शक्ति का प्रकाश होता है। तब ईश्वर साक्षात्कार होता है। जैसा कि केनोपनिषद खं० ४ में

लिखा है। अर्थात् इसी ग्रन्थके पृष्ट १३० में प्रमोद-
वन का ब्रह्म स्वरूप से भजन करने पर सभी भूत
प्राणी इस भजन करने वालेको अपने प्राणोंके समान
प्रेम करने लगते हैं। मुण्डक० १-२-१ में लिखा है-

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यं
स्तानित्रेतायां बहुधा सन्ततानि ।।
तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष,
वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ।।१।।

बुद्धिमान ऋषियों ने जिन कर्मों को मन्त्रों में
अर्थ को समझकर साक्षात्कार किया था वही कर्म
सत्य हैं। जो त्रेतायुग में विशेष करके विस्तार हुआ
यदि सत्य स्वरूप भगवद्धाम को चाहना हो तो यही
एकमात्र मार्ग है। भगवत धाम जाने का मन्त्रार्थ ही
निश्चित मार्ग है, आचरण में लावो। यह श्रुति की
आज्ञा है ।।१।। त्रेता में क्या था यह वाल्मी० २-१७-१४
में लिखा है:-

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति ।
निन्दितः सर्व लोकेषु ह्यात्माप्येनं विगर्हते ।।१४ ।

जो श्रीराम जी को नहीं देखता, जिसको श्री
रामजी नहीं देखते हैं, वह सर्व लोक निन्द्य है। उसकी

आत्मा भी उसकी निन्दा करती है। इस प्रकार आत्म साक्षात्कार के लिये श्री युगल सरकार की उपासना करनी पड़ती है। जैसाकि छान्दोग्य० ८-१३-१ में लिखा है:-

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये।
अश्व इव रोमणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्
प्रमुच्य धूत्वा शरीर मकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभि।
सम्भवामो त्यभि सम्भवामीति ॥१॥

श्रीरामजी की कृपा से श्रीसीताजी की शरणागति होती है और श्रीसीताजी की कृपा से श्रीराम जी की शरणागति होती है। तब जिस प्रकार से घोड़ा वालो कों झाड़कर शरीर साफ करता है। वैसे ही मैं भी पापों को झाड़कर, राहू के मुखसे निकले चन्द्रमा की तरह स्वरूप से प्रकाशमान हो शरीर को त्यागकर कृतकृत्य हो भगवत धामको प्राप्त होता हूँ।

❀ शुभम् ❀

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
क	५	ससार	संसार
क	८	मान्यमानाः	मन्यमानाः
क	११	दूषणा	इषणा
घ	८	पः्मा	पाप्मा
घ	२०	जपने	अपने
१	४	गुरुवे	गुरवे
२	२	भाष्याम्	भाष्यम्
२	२	कार	कारम्
२	३	हनूमन्त	हनूमन्तम्
२	५	इत्यर्थं	इत्यर्थः
२	१४	मह	महं
२	१६	तथा	त्तथा
२	१८	चित्र	चित्रं
३	२	वद्ध	वद्धं
३	५	हृदय	हृदयं
१०	२०	पूर्ण	पूर्वं
१२	१	स्मान्द्रि	स्मादिन्द्र
१४	१२	मातण्डं	मार्तण्ड
१७	२	पुरंधि	पुरन्धिं

१७	७	पुरन्धि	पुरन्धिं
२०	६	ऋतुवा	ऋतुथा
२०	८	ब्राह्मणों	ब्रह्माणो
२०	१०	परगै	परमै
२०	१४	विप्रेय	विप्रेभ्य:
२०	१५	मद्या	मघा
२२	३	कंसे	कँसे
२२	८	ऐसा	ऐसी
२२	१४	यजादौ	यज्ञादौ
२२	१६	सखी	सखि
२३	१	समवन्द्या:	सम्बन्धो:
२३	१	निश्चता:	निश्चिता:
२३	७	सम्बन्ध	सम्बन्धों
२५	१६	योगिन्द्र	योगीन्द्र
२६	३	सिंह	सिंहं
२६	३	मात्रान	मात्रान्
२६	८	शकर वाणी	शंकरवांणी
२६	१३	अग	अङ्ग
२६	१८	आगे	आगे अ० २ के १०५ में
२७	१६	मिष्ट	मिष्टं

२७	१६	संसिद्धच	संसिद्धैर्च
३०	२	किशारा	किशोरा
३०	२१	श्रीराय	श्रीराम
३२	६	अद्भुत	अद्‌भुत
३२	६	सुषुम्नोति	सुषुम्नीति
३३	११	ब्र० पा०	ब्र० सं० पा०
३४	१६	अशो	अंशो
३४	१६	च्छद्ध	च्छं द्ध
३५	१६	अन्यन्य	अनन्य
३६	१३	घरो	धरो
४०	४	स्रमन्	भ्रमन्
४०	१०	त्नय	त्रय
४०	१५	ननं	नैनं
४३	१५	शद्वितम्	शब्दितम्
४५	२	तम	तम्
४६	१३	द्भुवि	द्‌भुवि
४६	५	यकृत	पकृतं
५०	१	वद्धे	वद्धे
५१	६	शृगवेर	शृंगवेर
५७	१६	मान	मान

६२	६	शक्ला	शुक्ला
६३	६	सुगधि	सुगन्धि
६४	१५	वीर्ष्यो	वीर्य्यो
६८	१	स्वामि	स्वामिनी
६९	१२	मरे	मेरे
७०	१३	स्ताम्या	स्ताभ्या
७०	१५	स्लर्ण	स्वर्ण
७१	४	अ श	अंश
७४	८	साल	साथ
७४	१८	जिनने	जितने
७८	७	दृष्टवा	दृष्ट्वा
८२	१३	थाज	राज़
८३	६	प्रसादताः	प्रसादतः
८३	१०	सख्यञ्च	सख्यश्च
८३	११	षोडशापि	षोडशापि
८३	११	कीर्तितः	कीर्तिताः
८५	५	रत्नै	रत्नैः
८५	६	स्वास्तिक	स्वस्तिक
८५	७	वड़	वड़े
८६	५	स्वरण	स्वर्ण

८६	६	वास्तविक	स्वस्तिक
८६	१७	शोभामाना	शोभमाना
८६	१८	भूपणों	भूषणों
८८	११	भेदत	भेदतः
९१	३	मध्य	मध्या
९७	१४	वोत्यादि	वोत्पादि
१०२	५	सख	सखी
१०२	८	प्रदा	पदा
११०	१५	साम	सोम
११४	१२	सामोप्यं	सामीप्यं
११६	१३	श्रीहन्तु	श्रीहनु
१२१	८	७–६	७–२६
१२१	११	स्वरूप	सेवास्वरूप
१२६	२	द्वाया	द्वारा
१२६	४	तथानव द्वार वाली है जिसमें	
१२६	१२	मदल	महल
१२६	१५	मधूर्य	माधूर्य

१२७	१०	यनि	यानि
१२७	१०	स्याद्भुता	स्याद्‌भुत
११८	२	निन्य	नित्य
१३१	१५	त्वस्त्री त्वपुमा	त्वं स्त्री त्वंपुमा
१३२	१८	ऐरेक्षत	ऐक्षत्
१३५	३	व्रक्रच	वक्त्रञ्च

हा हनुमान का विरोध ?

मारग सोइ जाकहँ जोइ भावा ।
पण्डित सो जो गाल बजावा ।।

यह कलि कुचक्र ने सम्वत् २००१ वैशाख शुक्ल ७ को श्री सरयू तट अयोध्या में श्री मिथिला अग्नि कुण्ड निवासी श्रीराम दुलारी शरण जी द्वारा छेड़-खानो करके श्री हनुमत निवाश कोठा पर के बाबा श्रीरामकिशोर शरणजी को उसी वैशाख सुदी द्वादशी के दिन मेरे गुरु महाराज श्रीमधुकर जी महाराज के आश्रम पर आकर मुझको अनुचित तरह से अपमानित करना फिर मेरा गुरु परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार प्रश्न पर उत्तर न दे करके आचार्यों की वाणी को काट छांट कर छपाना, फिर इस प्रकार के कर्म का निर्णय लेने के वास्ते जब मैं नोटिश छपा कर सभा करने की समाज से प्रार्थना किया तो तब गुण्डों, धूर्तों को बढ़ावा देकर मेरे पीछे लगाना अनेक प्रकार के गुण्डई, धूर्ताई केश पैदा करके मेरे क्षेत्र न्यास में आपत्ती पैदा करना है। परा सीमा तक पहुँचा है। यदि सम्प्रदाय के उपासना की रक्षा का

नियन्त्रण होता तो तब क्या आज वर्तमान स्थित श्रीअयोध्या जानकीघाट श्रीवेदान्ती जो के स्थान में रहने वाले श्रीजानकीदास जी (जैपुर के रहने वाले श्री वंशीधर लढ़ीवालजी) श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के मानस रामायण बालकाण्ड में अपनी मनमानी टोका "हृदय तिलक नाम" कोलिख कर फिर मीठी बोली से- मैं सम्प्रदाय सिद्धान्त की रक्षा कर रहा हूँ कह कर धोखा देकर श्री अयोध्या भरके प्रमुख महन्थों से सर्व सम्मती दस्तखत कराकर उस तिलक को छपा दिये। जिसमें सम्प्रदाय सिद्धान्त विरुद्ध लेख है इस प्रकार की धोखा बाजी होती ?। यद्यपि मेरे सुझाव पर जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य पदासीन श्री स्वामी शिवरामाचार्यजी महाराज ने अपनी सम्मती रद्द करने हेतु जो अन्तर्देशीय पत्र श्री जगदेव संस्कृत कालेज कर्वी बांदा से ता० ५-५-७९ ई० को श्रीमणिराम छावनी महन्त श्री नृत्य गोपाल दासजी के नाम पर भेजा था वह पत्र इस प्रकार से है- पत्र सं० १११९८ महन्त श्री नृत्यगोपालदास जी, मणिरामजी की छावनी अयोध्या फैजाबाद। (इस पते पर प्रेषित पत्र के अन्दर में लिखा है:-

५-५-७९

१- श्री महन्त मैथिलीरमणशरणजो जानकीघाट।
२- श्री म० नृत्यगोपालदासजी मणिराम की छावनी।
३- श्री शिरोमणिदासजी निर्माणी अनी अयोध्या।
४- श्री जानकोशरण मधुकर।
५-श्री अवधेशकुमारदासजी शास्त्री व पं०श्रीहरियाचार्यजी

आप लोगों को सूचित किया जाता है कि-

हृदय तिलक मानस विवादस्थ होने के कारण मेरी सम्मति निरस्त है। इस पत्रको दिखाकर सम्मति वापस लें। इसकी सूचना मुझे लौटती डाक से दें।

श्री स्वामी रामनन्दाचार्य शिवरामाचार्य

५-५-७९

श्री नृत्यगोपाल दासजी महाराज ने हृदय तिलक के लेखक-श्रीजानकी दासजी को श्रीमणिराम छावनी में बुलाकर इस पत्र को दिखाया और श्री स्वामीजी को सम्मती को रद्द करने को कहा परन्तु श्रीजानकी दासजी जबरदस्ती सब सम्मतियों को छपा दिये। श्रीमणिराम छावनी के महाराज सम्मती नही दिये थे तो भी श्रीमणिराम छावनी के महाराज का भी आशीर्वाद देना जबरदस्ती ही छाप दिये। यह है

सम्प्रदाय के सिद्धान्तकी दुर्दशा। इस दुर्दशा के बढ़ावा देने के लिये बहुत से नवीन ग्रन्थ भी बन गये। जैसे लोमस जी के नाम पर लोमस संहिता तथा सीतायज्ञ शिवजी के नाम पर। दम्भिन निजमति कल्पि कर प्रगट किये बहुपन्थ यह कोई आश्चर्य नहीं है।

अब और सुनिये :- श्री जनकपुर धाम

श्री जानकी महल के उत्तर बगल में नवीन श्रीसीताराम विवाह मण्डप बना है। जिसमें दुलहा दुलहिन सीताराम मूर्ती के साथ श्रीजानकीजी के साथ श्रीजानकी जी के सखियों की भी मूर्ति निर्माण प्रसंगार्थ श्री ५ नैपाल सरकार की आज्ञा से श्री जनकपुर श्री अञ्चलाधीश ज़ी के द्वारा नौजनों की कमेटी गठित की गई जिसमें:-

१- पं० श्रीकृष्णमिश्रजी २-पं० श्री ताराप्रसादजी ३-पं० श्री देवनन्दन झा जी ४- म० श्रीरामशरण दास जी ५- म० रामटपल शरणजी शास्त्री ६- म० श्री अवधकिशोर दासजी ७- म० श्रीरामसागर दासजी ८- प० श्री जगत नारायणजी ९- पं० श्री सोमनाथ घिमिरे ज़ी। इन नौ सदस्यों की कमेटी की सम्बत् २०३५ साल के ता० २७-११-१९७८ को शाम चार

बजे श्री जानकी महल के फाटक के कोठे पर शीश महल में एक बैठक हुई जिसमें गुठि संस्थान श्रीराम मन्दिर के अधिकृत श्रीकृष्ण मुरारी शर्मा जी की अध्यक्षता में उपस्थित सदस्य निम्नलिखित थे:- पं० देवनन्दन झा जी पं० श्रीसोमनाथ घिमिरे जी म० श्री रामशरणदासजी, म० श्रीरामसागरदासजी, म० अवध किशोर दासजी, म० श्रीरामटहल शरणजी। इन छै सदस्यों के अलावा भी श्रीचन्द्रकलानुयाइयों की भीड़ बहुत थी। कमेटी में पास करने मकराना से मगाने योग्य मूर्तियों का एक लिष्ट पहले से बनाकर कुछ लोगोंने तैयार कर रक्खा था नवीन मगाने हेतु मूर्तियों का सवाल उपस्थित होने पर लिस्ट सामने आया। अध्यक्षजी के पेशकार ने पढ़ा तो श्रीचन्द्रकला नाम प्रधानता में सुनकर मैंने कहा कि यह शास्त्र सम्मत नहीं है। तब अवध किशोर दासजी ने जोर से कहा हम शास्त्र नहीं मानते हैं। तब मैंने कहा गीता अ० १६ श्लोक २३ में-

ये: शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तन्ते काम कारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

सुख सिद्धि परम गति तीनों जब प्राप्य नही हैं

तो तव मन्दिर वनाने से क्या फायदा है ? ऐसा पूछने पर आप वोले शास्त्र के बहुत प्रमाण हैं तव मैं बोला हाँ यह आपका कहना ठीक है। आप शास्त्र का प्रमाण दीजिये। इतना मेरे कहते ही चारों तरफ से कांव-कांव होने लगी। तब अधिकृत जी ने कहा ठीक है। आप चन्द्रकलानुयायी पाँच जने हैं और विरोधी केवल एक रामटहल शरणजी है। तो आप को ओट अधिक हैं मैं आपका यही सम्मत लिख देता हूँ कहकर उस कमेटी का विवरण लिखकर दिखा दिया। उस दिन का प्रसंग समाप्त हुआ। बाहर में सभी लोग अनेक वातें करने लगे। तब मैं दूसरे दिन श्री अधिकृतजी के घर में गया और उनसे भेंट करके कहा कि मन्दिर का धर्म निर्णय ओट से सिद्ध कैसे होगा ? दुनियां में कंकड़ पत्थर बहुत हैं हीरा जवाहरात कम हैं। तथा वैसे हो मूर्ख या नास्तिक ज्यादा हैं। धर्मात्मा तत्वमर्मज्ञ कम हैं तो तब अधिकृत जी बोले कि यदि मैं उस कमेटी में उस तरह का निर्णय नहीं करता तो तव मेरे पास न तो पुलिस था और न टेलीफोन ही था। यदि लाठी चल पड़ती तो तब मैं क्या करता आपके ? विरोधी वहुत ज्यादा थे आप

केवल दो व्यक्ति थे। इसलिये ऐसा करना पड़ा है आप अपना शास्त्र प्रमाणों को संग्रह करके प्रचार कीजिये। मन्दिर का काम शास्त्र सम्मत ही होगा। अन्यथा हमारी धर्म व्यवस्था ही बदनाम हो जायगी। कह तो तब मैंने यथा लब्ध प्रमाणों को संग्रह करके टाइप द्वारा ६ कागज बनाये। १ श्री ५ सरकार नैपाल को तथा १ श्रीराजमाताजी को १ अंचलाधीश जी को १ अधिकृतजी को चार कागज शास्त्र प्रमाण के भेजे तब बाद में बिरोधी लाउड स्पीकर में इतना उटपटांग प्रवचन किये कि स्वयं ही श्री जनकपुर में अपनी बदनामी कराये। फिर श्री किलाधीश जी ने फागुन यदी १२ विक्रम २०३५ को श्री जनकपुर जानकी महल के भीतर से श्री जानकी जी के सामने से लाउड स्पीकर द्वारा हजारों जनता के भीड़ में एक घण्टा भाषण करते हुये कहा कि जानकीशरण मधुकरिया पागल कुत्ता है आदि बहुत निन्दा किया है। ठीक है मैं निन्द्य हूँ और अनेक योनियों का घूमा हुआ होने से केवल कुत्ता ही नहीं गदहा, सूकर, कीड़ा मकोड़ा, सब होकर आया हूँ। अब श्री जानकी के शरण का समाचार श्री जानकी जी के कान तक

पहूँच गया होगा ठीक है। अब जानकीशरण का उद्धार हो जायगा। यद्यपि आपके भाषण का उत्तर वही परमिथिला के महान विद्वान श्री तारा प्रसाद जी नैपाल राज्य सम्मान्य ने तुरन्त आपको मोटर में बैठते-२ देदिया था फिर भी मुझे कोई इतराज नहीं है, परन्तु किलाधीश जी यह तो वतावें कि आपही का प्रकाशित किया हुआ "रसिक प्रकाश भक्तमाल" के पृष्ट ३६ के पंक्ति ११ से १४ तक में लिखा है-

रही कछु वासना उपासना की दृढ़ता में,
करतहि ध्यान प्रगटे हैं हनुमान जू।
श्रीप्रसाद रूप निज अलख लखायो,
उर ताप को मिटायो ज़न जानिकै नदान जू।
कनक भवन को स्वरूप दरसायो,
यथा मिथिला में तैसोई अवध प्रमान जू।
इष्ट के मिलायवे में हमही को गुरु मानो,
आलिन के यूथ चारुशीला हैं प्रधान जू।

क्या यह लेख झूठा है ? यदि झूठा ही है तो तब यह झूठ आपका है ? अथवा श्रीहनुमान जी का है अथवा श्रीस्वामीजीवा रामजी का या उनके चेला श्री जानकीरसिकशरणजी का है अथवा यदि सत्य है! तो

तव अब आपकी चन्द्रकला जी किस तरह से प्रधान आचार्य हो सकती हैं ? अब इस ग्रन्थ श्रीहनुमान तत्वको आप बुद्धि और मन लगा कर पढ़ें ? ऐसा ही प्रमाण खोजें तव आप एक चन्द्रकला भक्ति की परम्परा का निर्माण करें। अन्यथा सच्चा मुमुक्षू आपका चेला नहीं रह सकेगा। श्रीतारा प्रसादजी का कहा शब्द सत्य हो जायगा ।। जव यह झगड़ा श्रीराम दुलारीशरण जी द्वारा छिड़ा था तो तव यह गुप्त रहस्य है। सब दुनियां कौन कहै साधू समाज भी इस मर्म को नही जानता है। तब निन्दक की निन्दा का कैसे उत्तर दिया जावे ? ऐसा जान कर मैं चुप बैठा था। परन्तु ३ वर्ष बाद जब श्री हनुमानजी की निन्दा से भरा पुस्तक श्री चन्द्रकला परत्व प्रकाशिका नाम से छपाकर जब श्रीरामदुलारी शरणजी श्रीअयोध्या आकर मुझको भी दे गये तो तवसे मैं श्री अयोध्या के सन्त महन्थों से प्रार्थना करते रह गया कि सभा करके इस विवाद को शान्त करदो परन्तु सभी लोग कान में तेल डाले बैठे ही रह गये। अस्तु बैठे रहें श्रीहनुमान निन्दा का परिणाम कव तक क्या होगा देखते रहना। श्री किलाधीशजी

मेरी निन्दा करते आये हैं। उनके पहले के भी सभी नोटिश मेरे पास जमा है तथा अबके श्री मिथिला के भाषण में शायद उनके पेट का सब खजाना खाली तो भया होगा। परन्तु जव तक श्री हनुमानजी की निन्दा का निर्णय नहीं हो जाता है। तब तक वह खजाना कुबेर कासा भरा ही रहेगा। यद्यपि मैं निन्द्य हूँ आप मेरी खूब निन्दा करें यदि हो सके तो आप मेरे को अपनी निन्दा की अग्नि में हवन ही कर दें परन्तु मैं श्रीहनुमान जी के पक्ष में हूँ। मैंने यह बात आज छत्तीस वर्ष से प्रचार कर रक्खा है और आप मेरे को मिटाने में पूरी कमर कसे हैं। मुझे सब मालूम भी है। परन्तु मैं अपनी रक्षा का तृण भर भी इन्तजाम नही किया हूँ—

सुखिनः क्षत्रियापार्थ लभन्तेयुद्धमीदृशम्।

समर मरण अरु सुरसरि तीरा रामकाज क्षण भंगु शरीरा

में पढ़ा हूँ।

1514